मृत्यु और परलोकयात्रा

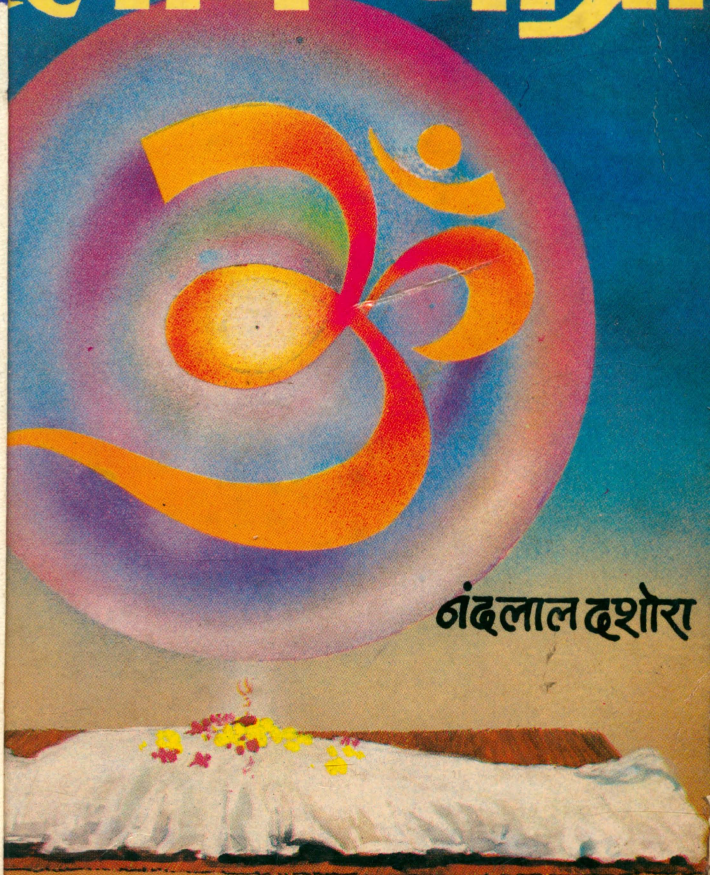

नंदलाल दशोरा

मृत्यु और परलोक यात्रा

मृत्यु जीवन का एक शाश्वत सत्य है। लेकिन इसे सुखद कैसे बनाया जा सकता है जिससे भावी जन्म अधिक उन्नत एवं समृद्ध बन सके, यह भी मनुष्य के हाथ में है। दैवी शक्तियाँ इसे अधिक उन्नत बनाने में सदैव सहयोग करती हैं। किन्तु अज्ञानवश मनुष्य स्वयं अपना पतन कर लेता है जिसके लिए यह प्रकृति जिम्मेदार नहीं है।

मृत्यु क्या है? क्या मृत्यु के बाद भी जीवन है? मृत्यु किसकी होती है? पुनर्जन्म कैसे और क्यों होता है? हमारे जीवन और परलोक के जीवन में क्या अन्तर है? मोक्ष क्या है? इत्यादि प्रश्नों की जानकारी देने का प्रयास किया है श्री नन्दलाल दशोरा ने।

मृत्यु और परलोक यात्रा

ब्रह्म, आत्मा और शरीर, जीवात्मा का स्वरूप
मृत्यु का अनुभव, मृत्यु के बाद का जीवन,
जीवात्मा का विकास, परलोक यात्रा,
पुनर्जन्म और अवतार इत्यादि
विषयों का गहन अध्ययन।

□□□

लेखक—
नन्दलाल दशोरा

मूल्य—२०.००

प्रकाशक
रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार

□ प्रकाशक—

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन)

रेलवे रोड, आरती होटल के पीछे

हरिद्वार-२४९४०१

: (01334) 426297

□ मुद्रक—

सुरेन्द्र प्रिंटर्स

४/१२३, बाजार गली, विश्वास नगर,

शाहदरा, दिल्ली-३२

□ लेखक—

नन्दलाल दशोरा

□ मूल्य—

बीस रुपये केवल।

□ प्रथम संस्करण : १९९०

□ द्वितीय संस्करण : १९९२

© रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन)

□ प्रमुख विक्रेता—

१. पुस्तक संसार, बड़ा बाजार, हरिद्वार

२. पुस्तक संसार, नुमायश का मैदान, जम्मू

३. गगनदीप पुस्तक भंडार, एस० एन० नगर, हरिद्वार

दिनांक—१०९१९९२

भूमिका

यह स्थूल दृश्य जगत् जितना हमें दिखाई देता है उससे कई गुना वह सूक्ष्म है जिससे इस स्थूल जगत् का निर्माण हुआ है। जिस प्रकार ऊर्जा ही पदार्थ का कारण है उसी प्रकार यह सूक्ष्म जगत ही स्थूल का कारण है। जिस प्रकार समुद्र में तैरते हुए हिमखण्ड का ९/१० भाग पानी के भीतर रहता है उसी प्रकार इस स्थूल जगत का बहुत बड़ा भाग सूक्ष्म रूप में है जो स्थूल आँखों से नहीं दिखाई देता। इसके लिए दिव्य दृष्टि आवश्यक है जो कुछ ही मनीषियों ने प्राप्त की है इसलिए उनके वर्णन को प्रामाणिक माना जाता रहा है।

इस सम्पूर्ण जड़-चेतनात्मक जगत का ज्ञान ही अध्यात्म का विषय है जबकि विज्ञान केवल स्थूल जगत के रहस्यों का उद्घाटन करता है। इन दोनों के दो भिन्न क्षेत्र हैं। अध्यात्म का सम्बन्ध चेतना से है तथा विज्ञान का पदार्थ से। इसलिए इन दोनों की न कोई समता है न विरोध। अध्यात्मवादी सत्य को प्रकट करता है एवं वैज्ञानिक परीक्षण द्वारा सत्य की खोज करता है। एक ने जाना है व दूसरा जानने की प्रक्रिया से गुजर रहा है। इसलिए अध्यात्म ज्ञान को सर्वोपरि माना जा सकता है। किन्तु अध्यात्म में अन्धविश्वास की सम्भावनाएँ अधिक हैं एवं विज्ञान की एक सीमा है जिसके आगे उसकी गति नहीं है। इसलिए दोनों की ही जीवन में श्रेष्ठता लाने के लिए आवश्यकता है।

मृत्यु जीवन का एक शाश्वत सत्य है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती किन्तु इसे सुखद बनाया जा सकता है जिससे भावी जीवन अधिक उन्नत एवं समृद्ध बन सके, यह मनुष्य के हाथ में है। दैवी शक्तियाँ इसे अधिक उन्नत बनाने में सदा सहयोग करती रहती हैं किन्तु अज्ञानवश मनुष्य स्वयं अपना पतन कर लेता है जिसके लिए यह प्रकृति जिम्मेदार नहीं है। मृत्यु क्या है ? क्या मृत्यु के बाद भी जीवन है ? मृत्यु के बाद जीवात्माएँ किन-किन लोकों में भ्रमण करती हैं तथा वहाँ रह कर क्या-क्या कार्य करती हैं ? क्या पुनर्जन्म भी होता है व क्यों होता है ? मृत्यु किसकी होती है ? हमारे जीवन और परलोक के जीवन में क्या भिन्नताएँ और समानताएँ हैं ? क्या मोक्ष जैसी भी कोई स्थिति है ? विभिन्न लोकों की जानकारी किस प्रकार प्राप्त की जाती है ? आदि अनेक जटिल प्रश्नों की जानकारी इस पुस्तिका में दी गई है। साथ ही सृष्टि रचना, ईश्वर जीवात्मा एवं शरीर का स्वरूप एवं परस्पर सम्बन्ध, जीवात्मा का क्रमिक विकास तथा परलोक यात्रा आदि विषयों का भी इसमें समावेश करके इसे अधिक उपयोगी बनाया गया है जिस से पाठकगण लाभान्वित हो सकें तथा उनकी कई जिज्ञासाओं का समाधान होकर इसके अनुसार अपनी जीवन प्रणाली में परिवर्तन ला सके।

भारतीय अध्यात्म क्षेत्र में साँख्य, योग, एवं वेदान्त, सर्वाधिक मान्य एवं प्रामाणिक ग्रन्थ हैं जिनका आधार वेद और उपनिषद् हैं तथा इन्हीं की व्याख्या पुराणों एवं ब्रह्मसूत्र में हुई है। थियोसॉफी के दिव्य दृष्टि प्राप्त मनीषियों मेडम ब्लेवट्स्की लेड वीटर, कर्नल ऑलकॉट, एनी बेसेण्ट तथा आचार्य रजनीश ने इस विषय पर प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करके इस ज्ञान को

अधिक समृद्ध बनाया है । इसके साथ ही कई पत्र-पत्रिकाओं में वैज्ञानिक शोध के आधार पर इस सम्बन्धी सामग्री प्रकाशित होती रहती है । इस विषय में पश्चिम में भी काफी वैज्ञानिक शोध एवं कार्य हो रहा है । इन्हीं सबको आधार मानकर पाठकों की सुविधा की दृष्टि से इस पुस्तिका का निर्माण किया गया है जिससे संक्षेप में इस विषय की सारभूत एवं प्रामाणिक जानकारी मिल सके ।

आशा है पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे ।

धन्यवाद !

दिनांक ६ नवम्बर, १६८६

लेखक—

नन्दलाल दशोरा

नन्दलाल दशोरा की अन्य कृतियाँ

१. कर्मफल और पुनर्जन्म

२. आत्मज्ञान की साधना

३. पातंजल योगसूत्र : योग दर्शन
(सरल हिन्दी व्याख्या)

४. अष्टावक्र गीता (सरल हिन्दी व्याख्या)

५. योगवाशिष्ठ : महारामायण
(सरल हिन्दी व्याख्या)

६. ब्रह्मसूत्र : वेदान्त दर्शन
(सरल हिन्दी व्याख्या)

७. अध्यात्म : धर्म और विज्ञान

८. तीन उपनिषद
(ईशावास्य, मुण्डक, श्वेताश्वतर)

९. योग साधना और उसके लाभ

विषय-सूची

क्र० सं०	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	**सृष्टि रचना** परब्रह्म का स्वरूप, परा और अपरा प्रकृतियाँ, ईश्वर का उद्भव, सृष्टि रचना क्रम, सृष्टि की व्यवस्था ।	११
२.	**ब्रह्म आत्मा और शरीर** ब्रह्म और आत्मा, आत्मा और शरीर, कुण्डलिनी शक्ति, आत्मा की अमरता, आत्मानुभव ।	१९
३.	**जीवात्मा का स्वरूप** जीवात्मा और परमात्मा में अभेद सम्बन्ध, जीवात्मा और परमात्मा में भिन्नता, जीवात्मा की अनादिता, जीवात्मा और कर्म, जीवात्मा और मन, जीवात्मा का लिंग निर्धारण ।	२९
४.	**स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर** स्थूल शरीर, सूक्ष्म स्थूल शरीर, कारण शरीर ।	४०
५.	**सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से भिन्न** सूक्ष्म शरीर को शरीर से अलग करना, परकाया प्रवेश ।	४७
६.	**मृत्यु का अनुभव** मत्यु का भय, मृत्यु क्या है ?, मृत्यु को सुखद बनाया जा सकता है मृत्यु का अनुभव ।	५३

७. **मृत्यु के बाद का जीवन** ६४

जीवात्मा का शरीर से मोह, दाह संस्कार, जीवात्मा का घर में निवास, जीवात्मा का सूक्ष्म लोक में प्रवेश।

८. **अन्तराल में भटकती आत्माएँ** ७४

अन्तराल की आत्माएँ, जीवात्माओं से सम्पर्क मन्त्रों द्वारा आह्वान, ध्यान द्वारा ज्ञान, जीवात्माएँ सहायता भी करती हैं।

९. **जीवात्मा का क्रमिक विकास** ८४

सूक्ष्म से स्थूल जगत, स्थूल शरीर, आकाश या भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर, मानस शरीर, आत्मिक शरीर, ब्रह्म शरीर, निर्वाण शरीर।

१०. **ब्रह्मविदों की परलोक यात्रा** १००

ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान के उपासक, ब्रह्मज्ञान का फल, परब्रह्म को प्राप्त होना, ब्रह्मलोक को प्राप्त होना, ब्रह्मलोक में जाने का मार्ग।

११. **साधारण जीवों की परलोक यात्रा** १०७

विभिन्न लोक, भू लोक, काम लोक, मनोलोक स्वर्ग लोक, बुद्धि लोक, आत्म लोक, निर्वाण लोक।

१२. **पुनर्जन्म और अवतार** १२२

पुनर्जन्म का कारण, पूर्वजन्म की स्मृति, अवतार।

१. सृष्टि रचना

(अ) परब्रह्म का स्वरूप

सृष्टि के आदि में केवल एक तत्त्व विद्यमान था जो अनन्त, अगम्य, अनादि, नित्य, असीम एवं सर्वव्याप्त था। यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा परमाणु का भी परमाणु था। यह इकाई स्वरूप भी नहीं था। उसे सत्, चित् व आनन्द स्वरूप भी नहीं कहा जा सकता। यही सृष्टि का मूल तत्त्व है जिसका कोई कारण नहीं है बल्कि समस्त जड़-चेतनात्मक जगत् का यही परम कारण है। वहाँ ज्ञान और क्रिया की भी अभिव्यक्ति नहीं थी। यह एक निरपेक्ष सत्य था। इसका कोई नाम रूप भी नहीं था। इसे न व्यक्त कहा जा सकता है न अव्यक्त, न मूर्त न अमूर्त, न दृश्य न अदृश्य, न शान्त न स्पन्दनयुक्त, न क्षर न अक्षर, न जड़ न चेतन, न आत्मा न परमात्मा, न शून्य न पूर्ण। उसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता फिर भी वही सब कुछ है। वह समस्त अभिव्यक्तियों से पूर्व में है।

वह सम्पूर्ण व्यक्त सृष्टि के पूर्व की अवस्था है। वही सत्ता है जिससे अन्य सभी सत्ताएँ प्रकट होती हैं। प्रकट होने के बाद ही उन्हें नाम दिया जा सकता है। जो पैदा ही नहीं हुआ उसे नाम कैसे दिया जा सकता है। अभिव्यक्ति से पूर्व का रूप

समझ से, बोध से, ज्ञान से तथा अनुभूति से भी परे है। ज्ञानियों ने भी इसकी पूर्ण जानकारी नहीं दी है, दे भा नहीं सकते क्योंकि यहाँ किसी की पहुँच ही नहीं है, देना उचित भी नहीं है। इससे भ्रांति अधिक पैदा होती है। इसके सत्य स्वरूप की थोड़ी व्याख्या उसी ने की है जिसे इसकी अनुभूति हुई है किन्तु वह शब्दों से परे हैं। यहाँ किसी ज्ञानी की पहुँच नहीं हैं। ज्ञान के अन्तिम छोर पर खड़े होकर इसका अनुभव किया जा सकता है। यही अनुभव जगत् को दिया जा सकता है। इस असीम में प्रवेश का कोई उपाय नहीं है तथा प्रवेश करने के बाद लौटने का उपाय नहीं है।

ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देव, गन्धर्व आदि इसके प्रवेश द्वार के बाहर हा खड़े रहकर इस जगत की रचना, संचालन एवं व्यवस्था कर रहे हैं। अतः इस परम चेतन तत्त्व की अनुभूति ही होती है, इसमें प्रवेश नहीं हो सकता। कल्पान्त में ही सभी इसमें प्रविष्ठ होते हैं फिर सृष्टि रचना की नई प्रक्रिया नये सिरे से आरम्भ होती है। ज्ञानियों ने इसे "परब्रह्म" कहा। वही परब्रह्म सबको धारण करने वाला है, समस्त जड़ एवं चेतन प्रकृतियों का स्वामी, संचालन एवं शासक है किन्तु वह इन प्रकृतियों से भिन्न भी है। इस प्रकार वह इन सबसे श्रेष्ठ एवं विलक्षण है। यह सृष्टि की कारण अवस्था है जिसे उसका निराकार स्वरूप कहते हैं। जब यह कार्य रूप में स्थित होता है तो इसकी विभिन्न शक्तियां भिन्न-भिन्न नाम-रूपों में प्रकट होती हैं।

यही इसका साकार रूप है जो इसकी कार्य अवस्था है। इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म (परब्रह्म) कारण ब्रह्म है, तथा सगुण ब्रह्म (अपर ब्रह्म) कार्य ब्रह्म है। ये ब्रह्म के भिन्न-भिन्न दो

स्वरूप नहीं है बल्कि वही एक इन दोनों लक्षणों से युक्त है। जिस प्रकार विद्युत अप्रकट रूप है एवं अग्नि उसका प्रकट रूप है ऐसा ही ब्रह्म का निराकार एवं साकार रूप है। दोनों भिन्न नहीं हैं। यह सृष्टि उसी एक की अभिव्यक्ति है। प्रत्येक कल्प में सृष्टि की नई रचना होती है तथा कल्पान्त में यह उस ब्रह्म में विलीन हो जाती है। जिस प्रकार बीज में सम्पूर्ण वृक्ष की सत्ता विद्यमान रहती है उसी प्रकार यह जगत् अप्रकट रूप मे, शक्ति रूप से उस परब्रह्म में विद्यमान रहता है तथा सृष्टि काल में वही शक्ति जड़-चेतन के रूप में प्रकट होती है। सत्ता का कभी नाश नहीं होता। रूपान्तरण मात्र होता है।

(ब) परा और अपरा प्रकृतियाँ

इस परब्रह्म में दो प्रकार की प्रकृतियाँ निहित हैं जिन्हें "परा" एवं "अपरा" प्रकृति कहते हैं। ये दोनों प्रकृतियाँ उससे अभिन्न तथा अप्रकट रूप से विद्यमान रहती हैं। परब्रह्म की इन दोनों प्रकृतियों से ही सृष्टि की रचना होती है तथा ब्रह्म इन दोनों से विलक्षण है। इन प्रकृतियों का विस्तार ही यह दृश्य जगत है। इन प्रकृतियों की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वह परब्रह्म ही नित्य एवं शाश्वत है जबकि ये प्रकृतियाँ अनित्य एवं विनाशी है किन्तु ज्ञान के अभाव में ये नित्य जैसी प्रतीत होती है।

यही भ्रम है जिसे "माया" कहा जाता है। प्रकृति को नित्य मानना ही माया है जो जीव के बन्धन का कारण है। सत् का ज्ञान होने पर ये प्रकृतियाँ अपने कारण परब्रह्म में

विलीन हो जाती है। इसी को जीव की "मुक्तावस्था" कहते हैं। इस प्रकार जड़ चेतनात्मक जगत का एकमात्र निमित्त एवं उपादान कारण वह परब्रह्म ही है जिससे सृष्टि को रचना, संचालन एवं प्रलय होता है। यही मूल तत्व है।

(स) ईश्वर का उद्भव

इस परम सत्ता (परब्रह्म) से ही व्यक्तिगत ईश्वर का उद्भव होता है। यही ईश्वर एक से दो और दो से तीन को प्राप्त होता है जिसे "त्रिमूर्ति" कहा जाता है। वह ईश्वर ही "शब्द ब्रह्म" है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश इसके तीन रूप हैं। आत्मा की भी इसी के अनुसार तीन उपाधियाँ हैं—स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर। इसकी चौथी अवस्था शान्त, अद्वैत, शिव की है। इसी त्रिमूर्ति से देवताओं की उत्पत्ति होती है जो सृष्टि के व्यवस्थापक हैं। यह ईश्वर उस अव्यक्त ब्रह्म का व्यक्त स्वरूप है। मनुष्य इस व्यक्त ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। उसकी अन्तरात्मा अनादि और ईश्वर रूप है।

उस परब्रह्म में असंख्य सृष्टियाँ और प्रत्येक में असंख्य सूर्यमण्डल है। प्रत्येक सूर्यमण्डल का अधिपति उसका ईश्वर है। प्रत्येक ईश्वर अपनी सृष्टि की रचना करता है। ये कल्पारम्भ में जब योग निद्रा से जागते हैं तो सृष्टि का सम्पूर्ण चित्र उनके मन में आ जाता है। उनके "एकोऽहं बहुस्याम" (मैं एक हूं, अनेक हो जाऊँ) के संकल्प से "ब्रह्मा" उत्पन्न होते हैं। दूसरे देव ऋषि भी ईश्वरेच्छा से आते हैं व उसी चित्र के अनुसार सृष्टि का विकास करने लगते हैं। इस विकास परम्परा का आदि या अन्त हम नहीं जान सकते किन्तु इस सम्पूर्ण विकास

का एक ही नियम है। दिव्य दृष्टि से महात्मागण इस सम्पूर्ण सृष्टि का पूरा विकास क्रम सिनेमा की फिल्म की भाँति शिष्य को दिखा देते हैं।

सृष्टि की रचना का महान कार्य पूरा करने के लिए ब्रह्मा ने तप किया जिससे दो प्रकार की शक्तियों का आविर्भाव हुआ। एक थी "ज्ञान शक्ति" तथा दूसरी "विज्ञान" अथवा "क्रिया शक्ति"। इन्हीं का नाम "गायत्री" और "सावित्री" रखा गया। गायत्री चेतना शक्ति का नाम है तथा सावित्री प्रकृति का नाम है। इन्हीं को सांख्य ने "पुरुष" और "प्रकृति" कहा है। ये ही इसकी "परा" एवं "अपरा" प्रकृतियाँ हैं जिन्हें चेतन और जड़ प्रकृतियाँ कहा जाता है। जड़ प्रकृति से पदार्थों का निर्माण होता है तथा चेतना शक्ति से उनमें प्राणों का संचार होता है जिससे वह जी उठता है, गतिमान हो जाता है।

यह सारी सृष्टि इन दोनों के संयोग का परिणाम है। अन्य जीवों में साधारण चेतना होती है जबकि मनुष्य में पाँचों प्राणों से मिली आत्म चेतना भी होती है। अन्य प्राणी प्रकृति (स्वभाव) से ही अपना जीवन यापन करते हैं किन्तु मनुष्य में अच्छे-बुरे, उचित, अनुचित का निर्णय करने के लिए विशिष्ट ज्ञान भी होता है जिससे वह पशुओं से थोड़ा ऊँचा स्थान रखता है। इस विशिष्ट ज्ञान के आधार पर वह ईश्वरीय प्रभुता को भी जान सकता है व प्राप्त कर सकता है जो उसके भीतर निहित है।

(द) सृष्टि रचना क्रम

सृष्टि की मूल सत्ता केन्द्र में है। प्रकृति उस पर आवरण है। यही असत् है, माया है। ईश्वर से ही प्रकृति का विकास होता है। यह प्रकृति उसके विकास की प्रथम अवस्था है। इसी से रूपों की उत्पत्ति होती है जो इसकी द्वितीय अवस्था है। तीसरी अवस्था में जाकर स्व-संवेदन ('मैं' पन) का विकास होता है। रूपों का विकास होने पर वह ईश्वर जगत् का व्यवस्थापक बन जाता है। इस व्यवस्था में देवगण भाग लेते हैं। ईश्वर की सत्ता प्रत्येक के केन्द्र में समाई रहती है जो इन रूपों का संचालन एवं नियमन करती है। अध्यात्म के अनुसार पदार्थ भी सजीव ही हैं किन्तु उनकी चेतना तुरीयावस्था में है। रूपों की स्थिरता होने पर वनस्पति वर्ग का विकास होता है। इसके बाद पशु बर्ग व मनुष्य वर्ग का विकास होता है।

सृष्टि रचना काल में अपरा प्रकृति से सर्व प्रथम आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल तथा जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है। पृथ्वी से खनिज, खनिज से वनस्पति और वनस्पति से जीव उत्पन्न होते हैं।

दूसरी ओर उसकी परा प्रकृति (चैतन्य प्रकृति) से बुद्धि, अहंकार, मन, चित्त, इन्द्रियाँ आदि उत्पन्न होती हैं। यही इस जड़-चेतनात्मक जगत् का स्वरूप है। इन दोनों प्रकृतियों के संयोग से ही मनुष्य के स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर का निर्माण होता है। इस प्रकार सृष्टि के समस्त दृश्य एवं अदृश्य पदार्थों का निर्माण उसी परब्रह्म की अभिव्यक्ति है। उस चैतन्य पर ज्यों-ज्यों प्रकृति के आवरण चढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों उनका घनत्व बढ़ता जाता है। इसी घनत्व के आधार पर सात लोक निर्मित होते हैं जिनमें सबसे स्थूल अधिक घनत्व वाला "भू लोक" है तथा सबसे सूक्ष्म "ब्रह्मलोक" है जो जीवात्मा का निवास स्थान

है। इसी घनता के आधार पर मनुष्य के शरीर के भी सात आवरण हैं जिनमें सबसे अधिक घनत्व वाला मनुष्य 'स्थूल शरीर' है। इसके भीतर अन्य सूक्ष्म शरीर है तथा अन्त में आत्मा का स्थान है जो सबसे सूक्ष्म है। यही आत्मा ईश्वर का अंश है।

(य) सृष्टि की व्यवस्था

इस सम्पूर्ण सृष्टि की व्यवस्था ईश्वर की इच्छानुसार देवगण करते हैं जो उस परब्रह्म का ही व्यक्त स्वरूप है। प्रत्येक विभाग के देवगणों से ऊपर उनका अधिपति देवता रहता है जैसे आकाश (ईथर) तत्त्व के देवगणों का अधिपति 'इन्द्र' है, अग्नि तत्त्वों का देवता 'अग्नि' है, वायु तत्त्व वालों का देवता 'वायु' है, जल तत्त्व का 'वरुण' है तथा पृथ्वी का 'कुबेर' है। ये देवता अपने-अपने तत्त्व के देवगणों के काम की निगरानी रखते हैं तथा ईश्वरेच्छानुसार उनसे कार्य करवाते हैं। इनकी प्रकृति व नियमों को समझ कर ही विज्ञान का विकास किया जा सकता है। इन्हीं को जानकर योगी कई प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं।

ईश्वर की परा शक्ति के कई सचेतक घटक हैं जिनमें सर्वोच्च स्तर के देवगण हैं। सृष्टि संचालन में इन्हीं का हाथ है जो उस ब्रह्म चेतना के अतीव निकट माने जाते हैं एवं उसी के साथ संयुक्त हैं। इनका प्रधान कार्य सृष्टि में संतुलन बनाए रखना है। ये देव ही अवतारों के रूप में ईश्वर की इच्छा से प्रकट होते हैं।

इस देव समुदाय का दूसरा वर्ग यक्ष, गन्धर्व और सिद्ध पुरुष हैं। यक्ष और गन्धर्व सुरक्षित सेना की तरह हैं। ये महत्वपूर्ण कार्यों में ही काम करते हैं। इन्हें 'दिग्पाल' और 'दिग्गज' भी कहते हैं। गन्धर्व कला के उद्‌गम हैं तथा उल्लास के कर्णधार हैं। काम कौतुक में भी इनका हस्तक्षेप है। ये देवता, यक्ष, गन्धर्व उच्च लोक के निवासी हैं। ये पात्रता के अनुसार मनुष्य पर अहैतुकि कृपा करते रहते हैं। आराधना, अनुष्ठान से भी ये प्रसन्न होकर अनुग्रह करते देखे गए हैं।

तीसरा वर्ग सिद्ध पुरुषों और पितरों का है जो भू लोक वासी प्राणियों से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं तथा इनके कार्यों में अधिक रुचि लेते हैं व सहयोग करते हैं। इनके शरीर सूक्ष्म होते हुए भी आवश्यकतानुसार ये स्थूल शरीर धारण करते रहते हैं। इनके कार्य सूक्ष्म शरीर द्वारा व्यापक स्तर पर किए जाते हैं जो स्थूल शरीर से सम्भव नहीं है। इनकी जीवन अवधि असीम होती है। इनकी क्षमता देवलोक के साथ जुड़ी रहती है। ये कहीं भी आ जा सकते हैं। ये असाधारण क्षमताएँ एवं सफलताएँ प्रदान करने को उत्सुक रहते हैं।

ये योग्य पात्र की स्वयं तलाश कर उसी को अपना बहुमूल्य अनुग्रह प्रदान करते हैं। ये ही सिद्ध पुरुष भौतिक शरीर में 'ऋषि' कहलाते हैं तथा सूक्ष्म शरीर में इन्हें 'दिव्य पुरुष' कहते हैं। ये दैव और मनुष्य की बीच की स्थिति में होते हैं। इनसे सम्पर्क किया जा सकता है। भौतिक लाभ के लिए ये पितर ही सहायता करते हैं। इसके लिए सिद्ध पुरुषों से सम्पर्क करना उचित नहीं है। ये केवल आत्मिक उन्नति में ही सहायक होते हैं। ये उपयुक्त पात्र की तलाश में रहते हैं जिसके माध्यम से अपना ज्ञान सृष्टि को देते हैं।

२. ब्रह्म, आत्मा और शरीर

(अ) ब्रह्म और आत्मा

अध्यात्म विज्ञान के अनुसार इस समस्त जड़, चेतनमय सृष्टि को मूल इकाई 'चेतन ऊर्जा' है तथा भौतिक पदार्थों की मूल इकाई "परमाणु" इसी का रूप है। भौतिक ऊर्जा के भीतर भी यही चेतन ऊर्जा है। जिससे इसका निर्माण हुआ है। वैज्ञानिकों ने भी इस भौतिक ऊर्जा के भीतर चेतनता का अनुभव किया है। यही चेतना समष्टि के हर कण में व्याप्त है। इस समष्टि चेतन को ही "ब्रह्म" नाम दिया है। यही समष्टि चेतन हर व्यक्ति में व्याप्त है जिसे "व्यष्टि चेतन" या "आत्मा" नाम दिया गया है।

शरीर में व्याप्त चेतना तथा समष्टि चेतना भिन्न-भिन्न नहीं है बल्कि एक ही चेतन ऊर्जा है। यह व्यष्टि चेतन (आत्मा) जब अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है तब यह समष्टि चेतन में विलीन हो जाता है। यह आत्मा उस विराट् ऊर्जा का अंश होते हुए भी पूर्ण हैं। इसका स्वतन्त्र अस्तित्व शरीर के कारण ज्ञात होता है जिसका मूल कारण अहंकार है। वास्तव में इसका स्वतन्त्र अस्तित्व है ही नहीं, किन्तु जब यह अहंकार रूपी आवरण से बद्ध हो जाता है तो इसका नाम "जीवात्मा"

हो जाता है। शुद्ध आत्मा के साथ जब अहंकार के कारण बुद्धि, मन, चित्त आदि का संयोग होता है तो इसे "जीवात्मा" कहा जाता है।

यह संयोग चूँकि अनादि काल से है अतः जीवात्मा को भी अनादि कहा जाता है। इन विजातीय तत्त्वों का वियोग होने पर यह आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को पुनः प्राप्त कर लेती है तथा समष्टि चेतन में स्थित हो जाती है जहाँ से इसका उद्गम है। यही इस जीवात्मा की "मुक्तावस्था" है। मुक्ता-वस्था तक जीवात्मा का परमात्मा से पार्थक्य बना रहता है।

यह ब्रह्म चेतन समष्टि चेतना है जो जीव में आत्मचेतना के रूप में कार्य करती है। इस आत्म चेतना का मुख्य आधार प्राण चेतना है जिसका अपना स्वतन्त्र विज्ञान है। आत्म चेतना के ज्ञान से इसे जाना जा सकता है। इस विराट ब्रह्म का लघुतम घटक परमाणु है जिसके भीतर अनन्त ऊर्जा समा-हित है, उसी प्रकार शरीर का लघुतम घटक आत्मा है जो शक्ति का केन्द्र है। यह जीवात्मा उस विराट का अंश मात्र होते हुए भी उसमें बीज रूप में वह सब कुछ विद्यमान है जो उस विराट में है।

जिस प्रकार छोटे से बीज में विशालकाय समूचे वृक्ष की सत्ता भरी पड़ी है मनुष्य के छोटे से वीर्य कण में मनुष्य की समूची सत्ता विद्यमान है, मनुष्य के विकास की समस्त सभा-वनायें उस वीर्य कण में पहले से ही विद्यमान है, उसी के अनु-सार मनुष्य का विकास होता है।

यदि वह विद्यमान न हो तो उसका विकास सम्भव ही नहीं था। इसी प्रकार आत्मा में परमात्मा का समस्त

वैभव विद्यमान है। उसको जाग्रत करने की विधि योग तथा तप है क्योंकि वह ऊर्जा सुप्त पड़ी है। उसे जाग्रत करके ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त की जा सकती है तथा स्वर्ग और मुक्ति की भी सम्भावनाएँ हैं।

ब्रह्म और जीवात्मा की भिन्नता अहंकार रूपी मिथ्या आवरण के कारण ज्ञात होती है। इस बाधा के हटते ही यह प्रतीति हो जाती है यह आत्मा ब्रह्म ही है। इसे परमात्मा से भिन्न मानना मिथ्या धारणा है। भिन्नता का दूसरा कारण मन है जो भिन्न संस्कारों वाला है। इसी कारण जीवात्मा और परमात्मा में पुत्र एवं पिता का सम्बन्ध हो जाता है। यह जीवात्मा ईश्वर से भिन्न गुणों वाली हो गई है। अध्यात्म इसी कारण आत्मा को ही महत्व देता है जो शाश्वत है।

ये जीवात्माएँ ही अनन्त हैं जो हर व्यक्ति की भिन्न-भिन्न हैं किन्तु शुद्ध आत्मा एक ही है। आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व अहंकार एवं अज्ञान के कारण है जिससे प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न आत्माएँ मानी जाती हैं।

(ब) आत्मा और शरीर

शरीर और आत्मा एक ही सत्य के दो छोर हैं। शरीर दृश्य है, आत्मा अदृश्य है। पंखे में बिजली दिखाई नहीं देती किन्तु वह बिजली से चल रहा है, उसी प्रकार शरीर के भीतर आत्मा है जिसके कारण शरीर गतिमान हो रहा है। आत्मा और शरीर भिन्न नहीं हैं बल्कि एक ही अस्तित्व की दो तरंग अवस्थाएँ हैं जैसे पदार्थ और ऊर्जा। शरीर उस अदृश्य आत्मा

का ही दृश्य रूप है। यह जीवात्मा अपनी वासना पूर्ति हेतु अनेक शरीर धारण करता है किन्तु यह कभी नष्ट नहीं होता, यह अमर है।

भारतीय धर्म ने आत्मा को ही सब कुछ माना है। यही आत्मा शरीर को अपने निवास के लिए उपयोग करता है। शरीर का महत्त्व घर से अधिक नहीं है। यह आत्मा एक सूक्ष्म तत्त्व है जो विज्ञान की पकड़ से बाहर है। उसे अन्तर्दृष्टि से ही जाना जा सकता है। आत्मा को जानने का मार्ग ध्यान है, विज्ञान की प्रयोगशाला में उसे नहीं देखा जा सकता। इसका अनुभव समाधि में ही होता है। इस आत्मा का अपना अलग शरीर है जिसे "सूक्ष्म शरीर" कहते हैं। यह जीवात्मा के साथ छाया की भाँति संयुक्त रहता है। इसका दूसरा शरीर "भौतिक शरीर" है जो पंचतत्त्वों का बना है। यह शरीर भी इस आत्मा का अभिन्न अंग है। आत्मा की अभिव्यक्ति इसी शरीर से हुई है। इसके बिना आत्मा को नहीं जाना जा सकता। यह आत्मा अपनी वासना पूर्ति हेतु इसे धारण करता है व व्यर्थ हो जाने पर इसे छोड़ देता है तथा नया शरीर ग्रहण कर लेता है। आत्मा की उपस्थिति से ही शरीर की समस्त कोशिकाएँ जीवित रहती हैं। शरीर से आत्मा के निकल जाने पर वे मृत हो जाती हैं तथा इनके मृत हो जाने से यह शरीर भी मृत हो जाता है।

मृत शरीर में भी आत्मा का प्रवेश हो जाने पर वह जीवित हो उठता है। शरीर हर जन्म में बदल जाता है किन्तु जीवात्मा वही रहता है। यह जीवात्मा की क्रिया शक्ति का माध्यम मात्र है जिससे जीवात्मा क्रिया करता है। इसका महत्त्व

मशीन की भाँति है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, उसके कर्मचारी हैं, मन इसका मैनेजर (व्यवस्थापक) है, जो सम्पूर्ण व्यवस्था करता है। ये सभी आत्मा रूपी शक्ति से संचालित है। मृत्यु पर आत्मा ही शरीर को अपने से अलग देखता है, शरीर आत्मा को नहीं देखता क्योंकि आत्मा ही दृष्टा है। जीवन की घटनाओं का प्रभाव आत्मा पर नहीं पड़ता, मन, अहंकार आदि पर पड़ता है। वे ही इसके लिए जिम्मेदार हैं। शक्ति जिम्मेदार नहीं है।

(स) कुण्डलिनी शक्ति

शरीर के भीतर जो ऊर्जा का केन्द्र है उसे "कुण्डलिनी" कहा जाता है। यह शक्ति सुप्तावस्था में है। शरीर को जितनी शक्ति की आवश्यकता है उतनी शक्ति उसे स्वतः मिलती रहती है। यही जीवन ऊर्जा का केन्द्र है। विशेष कार्य के लिए शरीर को अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता होने पर यह यहीं से प्राप्त होती है। सामान्य व्यक्ति इसके १५% का ही उपयोग कर रहा है, बाकी सुप्त पड़ी है। इसको विधिपूर्वक जाग्रत भी किया जा सकता है। हठ योग में इसकी विधियाँ हैं किन्तु वह सामान्य व्यक्ति के लिए उपयुक्त नहीं है।

इस विधि से अचानक विस्फोट के साथ उसका जागरण होता है जिससे पूर्व तैयारी न होने पर मनुष्य पागल भी हो सकता है व मृत्यु भी हो सकती है। अन्य कई सामान्य विधियाँ हैं जिससे धीरे-धीरे इसको जाग्रत किया जा सकता है। अतिरिक्त शक्ति के जागरण से मनुष्य को अतीन्द्रिय ज्ञान होता है। कई व्यक्ति तो इसके २½% का ही उपयोग करके जी रहे हैं।

शक्ति सबमें बराबर है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से साधक को पहले जीवात्मा का अनुभव होता है। इसमें उसे भिन्न-२ आत्माएँ ज्ञात होती हैं। यही जीवात्मा का स्वरूप है। इसके बाद आत्मा का अनुभव होता है जो समष्टिगत आत्मा है। यही ब्रह्म का स्वरूप है। कुण्डलिनी जागरण से परमात्मा की थोड़ी-सी झलक मिलती है किन्तु उसे पाने के लिए आत्मा को भी खोना पड़ता है अन्यथा यात्रा यहीं पर अवरुद्ध हो जाती है।

अतिन्द्रिय ज्ञान में शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, आत्मा, सिद्धियाँ, अहंकार आदि के अनेक कटु एवं लुभावने दृश्य सामने आते हैं। इनमें जहाँ मन ठहर गया वहीं यात्रा अवरुद्ध हो जाती है। जो इन मन, अहंकार आदि को खोना नहीं चाहता वह आत्मा पर ही रुक जाता है। उसकी आगे की यात्रा अवरुद्ध हो जाती है। आत्मा को भी खोने पर उसे "मुक्ति" का अनुभव होता है। यही निर्वाण और मोक्ष है जो जीवात्मा की अन्तिम अवस्था है। यही परमगति है।

ऊर्जा का यह कुण्ड अनन्त शक्ति वाला है। इसमें से कितना ही निकालो यह कम होता ही नहीं। इसका सम्बन्ध उस विराट् ऊर्जा भण्डार से है जिसमें समस्त सृष्टि का संचालन हो रहा है। वही अनन्त ऊर्जा इस शरीर को निरन्तर प्राप्त हो रही है। इसे खर्च करने पर ही यह प्राप्त होती है अन्यथा नहीं।

(द) आत्मा की अमरता

आत्मा अमर है तथा शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता। यह पुनर्जन्म भी ग्रहण करता है। इसका

सम्बन्ध शरीर से थोड़े समय ही बना रहता है। "यह आत्मा शरीर से अलग होकर भी जीवित रहता है। हिरोडोटस ने कहा, "शरीर के नाश होने पर आत्मा जन्म लेने वाले प्राणियों में पुनः प्रवेश करता है और थलचर, नभचर और जलचर प्राणियों में भटकते-भटकते तीन सहस्र वर्षों में पुनः मनुष्य शरीर में लौटकर आता है।"

पुराने मिश्र निवासी मानते थे कि, आत्मा अपने निजी अलग अस्तित्व में रहता है और शरीर से सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर सकता। मृत शरीर के नाश होने पर उस आत्मा को पुनः मृत्यु और विनाश का दुःख भोगना पड़ता है। मृत्यु के बाद आत्मा संसार भर में स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करता है परन्तु रात के समय सदा दुःखी, भूखा, प्यासा अपने मृत शरीर के पास लौट आता है। यदि पुराने शरीर में कोई चोट आ जाए तो आत्मा के भी उसी भाग में चोट आ जाती है।" इसी कारण मिश्र निवासियों ने मुर्दों की रक्षा के लिए "ममीज" का आविष्कार किया।

खाल्डियन लोग मानते थे कि आत्मा अपनी कब्र से ही बंधा रहता है। वे मुर्दे के पुनः जी उठने की आशा करते थे।

आर्य जाति का विश्वास था कि आत्मा शरीर से अलग रहकर अधिक आनन्द से रहती है। अतः उन्होंने मुर्दों को शीघ्र जलाने की व्यवस्था की। वे यह मानते थे कि शरीर को नष्ट कर देने से आत्मा का उससे मोह छूट जाता है जिससे उसे अपनी अगली यात्रा में सहायता मिलती है अन्यथा वह शरीर से ही बंधा रहता है। उन्होंने यह भी कहा कि ये आत्माएँ इन्द्रियों के उपयोग के लिए पुनः आना चाहती हैं।

ईसामसीह के जमाने में फेरिसी लोग मानते थे कि आत्मा भिन्न-भिन्न शरीरों में भटकता रहता है। ईसामसीह ने भी कहा था कि पैगम्बर इलियास ही जॉन वेप्टिस्ट बनकर पुनः आए थे।

पाइथेगोरस प्रथम यूनानी थे जिन्होंने यूनान को पुनर्जन्म का सिद्धान्त दिया।

(य) आत्मानुभव

आत्मज्ञान ही परमात्मा का ज्ञान है। प्रत्येक व्यक्ति शरीर नहीं आत्मा है इसलिए परमात्मा भी वही है। इसी कारण आत्मज्ञान होने पर वह "अहं ब्रह्मास्मि" कह सकता है किन्तु यदि उसका अहंकार शेष है तो वह ऐसा नहीं कह सकता। अहंकार के कारण ही वह जीवात्मा और ईश्वर में भेद देखता है। उसे द्वैत ही दिखाई देता है। तब वह "ईश्वर पुत्र" कहता है। यह भिन्नता जीवात्मा के तल तक की है। शुद्ध आत्मा और ईश्वर में भिन्नता नहीं है।

आत्मज्ञान के बाद उसके सभी कार्य नाटक की भाँति होते रहते हैं जिनसे वह अलग रहकर दृष्टा मात्र हो जाता है, संसार में जल-कमलवत् हो जाता है। फिर कर्म उससे लिप्त नहीं होते, न बन्धन का कारण बनते हैं। आत्मज्ञान से पूर्व किये गये सभी कर्मों का बन्धन होता है जिनका फल भोगना पड़ता है। आत्मज्ञान से आचरण बदल जाता है किन्तु आचरण बदलने से आत्मज्ञान नहीं होता। इससे जीवन पवित्र बनता है किन्तु आगे की यात्रा आवश्यक है। आत्मज्ञान करना ही धर्म का

मार्ग है। वास्तविक धर्म नैतिकता से ऊपर की स्थिति है। अध्यात्म में प्रवेश होने पर ही वह धार्मिक होता है। आत्म-ज्ञान के बाद ही व्यक्ति परिपूर्ण होता है।

नैतिकता का सम्बन्ध मन तक ही सीमित है कि उसे बुराई से बचा ले। धर्म इस मन के पार की अवस्था है। आत्मज्ञान से ही मुक्ति होती है। नियम, संयम का सम्बन्ध भी मन तक ही है। आत्मज्ञान पर मनुष्य-कृत नहीं, ईश्वरीय नियम ही महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। शास्त्र पढ़ने, कर्म एवं आचरण से ज्ञान नहीं होता। स्वयं देखने से मिलता है। ऐसे ज्ञान की अभिव्यक्ति भी नहीं होती। आत्मा के ऊपर की जमी धूलि को झाड़े बिना आत्मानुभव सम्भव नहीं। आत्मज्ञान में मृत्यु का अनुरूप होता है, तभी अमृत की उपलब्धि होती है। मृत्यु से ही नवजीवन मिलता है। पुराने को ढोते रहने से नया नहीं मिल सकता। नये के लिए पुराने का त्याग आवश्यक है। नया मकान बनाने में पुराने को गिराना आवश्यक है। पुराने खण्डहर पर नया भवन निर्मित नहीं हो सकता।

आत्मानुभूति के समय वह स्वयं को शरीर से भिन्न देख लेता है तभी उसको प्रतीति होती है कि मैं शरीर नहीं आत्मा हूं तभी उसे अमृतत्व का अनुभव होता है। धर्म चेतना से जुड़ा हुआ शास्त्र है। दर्शन (फिलॉसॉफी) की यहाँ गति नहीं है। फिलॉसॉफी जानने वाला धर्म को उपलब्ध नहीं हो सकता।

मनुष्य शरीर नहीं आत्मा ही है। आत्मा ही उसका वास्तविक स्वरूप व स्वभाव है। आत्मा निर्वस्त्र है, शुद्ध है। इस पर जो आवरण है वे मनुष्य ने ओढ़ रखे हैं जिससे उसे आत्मा का पता नहीं चलता। ये आवरण भी झूठे हैं, मिथ्या हैं। इसलिए इन्हें "माया" कहा है। ये सभी भ्रम व अज्ञान के कारण हैं जो ज्ञान से ही हटेंगे। अन्य कोई उपाय नहीं है। अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेना ही "मुक्ति" है। जब तक ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध नहीं हो जाता तब तक सौ कल्पों में भी मुक्ति नहीं हो सकती। जीवात्मा तथा परमात्मा का जो भेद है वह सदा बना ही रहेगा।

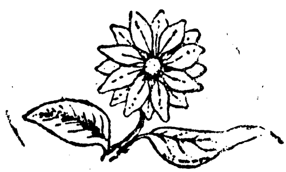

३. जीवात्मा का स्वरूप

(अ) जीवात्मा और परमात्मा में अभेद सम्बंध

इस समस्त जड़ चेतनात्मक जगत् का एकमात्र कारण वह परब्रह्म है, अन्य सभी उसके कार्य हैं। उसकी शक्तियों का जब प्रकटीकरण होता है तो इस जड़ चेतनात्मक सृष्टि का विस्तार होता है। ब्रह्म की परा प्रकृति चेतन का स्वरूप ही यह जीवात्मा है तथा अपरा प्रकृति का स्वरूप यह समस्त जड़ समुदाय है। इस प्रकार यह जीवात्मा उस एक ही ईश्वर का अंश होने से उससे अभिन्न है।

जीवात्मा की परमात्मा से अभिन्नता होते हुए भी वह प्रकृति के मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि के आवरणों के कारण उससे भिन्न भी हो गई है। उपासना की दृष्टि से इन दोनों की एकता स्थापित की जाती है किन्तु कारण कार्यभाव से, पिता-पुत्री की भाँति एवं दूध दही की भाँति ये दोनों अभिन्न होते हुए भी भिन्न हो गई है। दोनों के गुणों में भिन्नता आ गई है। जिस प्रकार दही, दूध का ही रूप है किन्तु वह स्वयं दूध कैसे हो सकता है। दही और दूध भिन्न भी नहीं है तथा भिन्न है भी। ऐसा ही ब्रह्म और जीवात्मा है। जिस प्रकार दही पुनः दूध नहीं हो सकता उसी प्रकार विकार को प्राप्त हुई जीवात्मा

कभी ब्रह्म नहीं हो सकती। उसका यह भेद अनादि काल से है। किन्तु जब वह अपने समस्त विकारों का त्याग कर देती है तो वह शुद्ध आत्म भाव को प्राप्त हो जाती है जो स्वयं ब्रह्म ही है। इस स्थिति को 'लय मुक्ति" कहते हैं।

उपासना काल में उसे ऐसी अनुभूति हो जाती है कि "मैं" तथा "ब्रह्म" भिन्न नहीं हैं। मैं उसी का परिवर्तित स्वरूप हूं किन्तु जानना और हो जाना दो भिन्न स्थितियाँ हैं। परमात्मा सर्वज्ञ है व जीवात्मा उसे जानने वाला है। जानने वाला स्वयं सर्वज्ञ कैसे हो सकता है। विद्युत को जानने वाला कभी स्वयं विद्युत नहीं हो सकता। ऐसा ही परमात्मा और जीवात्मा है। परमात्मा और जीवात्मा के धर्मों में भेद हो जाने से जब तक वह अपने धर्मों का सम्पूर्ण रूप से परित्याग नहीं कर देती तब तक उसकी परमात्मा से भिन्नता बनी रहेगी। इसकी यह भिन्नता निम्न प्रकार से है।

(ब) जीवात्मा और परमात्मा में भिन्नता

जीवात्मा भी परमात्मा की ही भाँति विभु (व्यापक) है किन्तु प्रकृति के आवरणों के कारण उसका कारण शरीर निर्मित हो गया है जिससे उसके सूक्ष्म एवं स्थूल शरीरों का निर्माण हो गया। इस कारण वह सीमित एवं एक देशीय हो गया। इस कारण शरीर के आवरण के ही कारण प्रलयकाल में भी उसका अपना अलग विभाग बना रहता है तथा सृष्टि काल में भी शरीरों के सम्बन्ध से उसके कर्मों का मिश्रण नहीं होता, विभाग बना रहता है। इस कारण से जितने शरीर हैं उतनी ही जीवात्माएँ हो गई हैं जिससे उसकी व्यापकता सीमित हो गई।

सभी व्यक्तियों की जीवात्माएँ भिन्न-भिन्न हैं, यही "मैं" का स्वरूप है। इस प्रकार यह जीवात्मा एक देशीय हो गया, वह शरीर का अधिष्ठाता है जबकि परमात्मा सर्वव्यापी है। जीवात्माएँ अनेक हैं किन्तु परमात्मा एक है।

जीवात्मा अहंकार से ग्रस्त होने के कारण, राग, द्वेष, वासना, इच्छा, कर्म, पुरुषार्थ, सुख, दुःख जानना आदि गुणों वाली है। जबकि परमात्मा इन सबसे परे इनका साक्षी है। जीव व्याप्य है, ईश्वर व्यापक है। जीवात्मा आसक्ति के कारण भोग एवं उनके फलों का भोक्ता है, परमात्मा इनका साक्षी व दृष्टा मात्र है। परब्रह्म उपास्य है तथा जीवात्मा उपासक है। जीव अल्पज्ञ है, ब्रह्म सर्वज्ञ है। जीव ईश्वर के अधीन है, परमात्मा उसका शासक एवं स्वामी है, वह प्रकृति का भी स्वामी है। ब्रह्म जानने योग्य है जिसके जानने से जीवात्मा को मुक्ति लाभ मिलता है, जबकि जीवात्मा जानने वाला है। ब्रह्म आनन्दमय है, जीवात्मा दुःखों से घिरा रहता है। देवता भी जीवात्मा ही हैं किन्तु मनुष्य से थोड़े ऊपर हैं। परमेश्वर कारण हैं, जीव उसका कार्य है किन्तु दोनों अनन्य होने से ही "अयमात्मा ब्रह्म" कहा जाता है।

"अयमात्मा ब्रह्म" का अर्थ है समाधि दशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है तब वह कहता है कि यह जो मेरे में व्यापक है, वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। जिस प्रकार शरीर में जीवात्मा है उसी प्रकार जीवात्मा में परमेश्वर व्यापक है। परमेश्वर शरीर में जीव को प्रवेश करा कर जीव के भीतर स्वयं अनुप्रविष्ठ हो जाता है। वह परब्रह्म ही सबका अन्तरात्मा है, जीवात्मा सबका अन्तरात्मा नहीं है। परमात्मा ही सर्वश्रेष्ठ दृष्टा एवं सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता है, जीवात्मा दृष्टा होते

हुए भी उसका दृष्टापन परमेश्वर के ही कारण है । जीवात्मा अणु स्वरूप है वह परमात्मा की भाँति विभु स्वरूप नहीं है ।

इस प्रकार जीवात्मा ईश्वर से भिन्न हो गया है किन्तु जब वह अपने समस्त आवरणों का परित्याग कर देता है तो उसकी यह भिन्नता मिट जाती है तथा वह ब्रह्म में उसी प्रकार लय हो जाता है जैसे सागर में बूंद । कुछ मतावलम्बी यह भी मानते हैं कि उस समय भी भेद बना रहता है । जीवात्मा परमेश्वर के साथ ही सरल भाव से रहने वाला है किन्तु वह परमेश्वर की भाँति जगत् की रचना नहीं कर सकता न यह उसका कार्य है । यह कार्य परमेश्वर का ही है । जीवात्मा में जो विकृतियाँ आई हैं वह देहाभिमान के कारण आई हैं । देहाभिमान छूटने पर ये विकार छूट जाते हैं, तभी आत्मज्ञान होता है । मन और बुद्धि भी जीवात्मा से अलग नहीं हैं । ये इसी की योग्यताएँ हैं ।

बुद्धि, विवेक, विचार, मन, इच्छा, प्रयत्न, अनुभव, स्मृति आदि इसी के गुण हैं । ब्रह्माकुमारी वाले भी जीवात्मा और परमात्मा में भेद मानते हैं । वे कहते हैं, 'सभी की आत्माएँ भिन्न-भिन्न हैं । आत्मा कभी परमात्मा नहीं हो सकती, न आत्मा परमात्मा है ।' जैन धर्म भी आत्माएँ भिन्न मानता है । यह सारी व्याख्या जीवात्मा के तल की ही हैं जो ईश्वर से भिन्न है । शुद्ध आत्मा और ईश्वर में भेद नहीं है ।

(स) जीवात्मा की अनादिता

जीव और उसके कर्म अनादि हैं । प्रलयकाल में भी उसकी सत्ता एवं सूक्ष्म विभाग का अभाव नहीं होता । जीव और उसके

कर्म ब्रह्म में सूक्ष्म रूप में उसी प्रकार विद्यमान रहते हैं जिस प्रकार जल में घुलकर भी नमक अपनी सत्ता को नहीं मिटा देता। प्रलयकाल में जीव अपने आप मुक्त नहीं होते। नये कल्प में फिर उसी के अनुसार रचना होती है। यह जीवात्मा नित्य, शाश्वत व पुरातन है। शरीर के नाश होने से इसका नाश नहीं होता। जीव और जड़ प्रकृति दोनों ही प्रलय काल में अपने धर्मों का परित्याग नहीं करते।

जीवात्मा नित्य है, उसका कभी नाश नहीं होता। मृत्यु के बाद वह अपने कर्म संस्कारों के अनुसार परलोक में जाकर पुनः नया शरीर धारण करता है। प्रलय काल में यह जीवात्मा अपने कारण शरीर सहित अव्यक्त रूप से ब्रह्म में विलीन रहता है तथा सृष्टि काल में वह पुनः सूक्ष्म एवं स्थूल रूप से प्रकट होता है। यह जीवात्मा जन्म और मृत्यु से रहित है। न इसे उत्पन्न किया जा सकता है, न इसका नाश ही होता है। यह भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में यात्रा कर रहा है। भौतिक दृष्टि से यह अपनी यात्रा स्थूल शरीर में प्रवेश करके करता है तथा तात्विक दृष्टि से यह भिन्न-भिन्न मानसिक भूमिकाओं में से गुजर कर निरन्तर विकास को प्राप्त होता रहता है। शरीर से पूर्व भी इसका अस्तित्व था एवं मृत्यु के बाद भी रहेगा। शरीर तैयार होने पर यह उसमें प्रवेश करता है तथा शरीर व्यर्थ हो जाने पर यह उसे छोड़ देता है।

माँ-बाप के रासायनिक तत्व मिलकर उस सैल का निर्माण करते हैं जो शरीर का पहला घटक है, तो उसमें आत्मा प्रवेश कर जाता है। यदि ऐसा घटक विज्ञान की प्रयोगशाला में निर्मित किया जा सके तो जीवात्मा उसमें भी प्रविष्ठ हो

जायगा। जीवात्मा को तो अपनी वासना पूर्ति के लिए केवल माध्यम की आवश्यकता है, वह किसी भी प्रकार से तैयार हो। केवल मुक्तात्माएँ ही निर्वासना मय होने से इसमें प्रवेश नहीं करेगी।

यह जीवात्मा ऐसे माध्यम को चुनती है जो उसकी प्रकृति के अनुकूल हो और उसकी वासनापूर्ति का माध्यम बन सके। यह जीवात्मा स्वेच्छा से नहीं बल्कि संस्कारों से वांछित होकर प्रवेश करता है। इस प्रकार जीवात्मा की यह यात्रा शरीर से परलोक एवं परलोक से शरीर के बीच में निरन्तर चलती रहती है जब तक उसे मुक्तावस्था की प्राप्ति न हो जाय।

(द) जीवात्मा और कर्म

जीवात्मा का कर्तापन उसका स्वाभाविक धर्म नहीं है। उसका कर्तापन अन्तःकरण आदि के सम्बन्ध से है, अन्यथा यह भी अकर्ता एवं निष्क्रिय है। वास्तव में समस्त कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये हुए हैं किन्तु अहंकार वश वह अपने को कर्ता मान लेता है इसलिए वह कर्म फलों का भोक्ता भी हो जाता है।

जीवात्मा का कर्तापन परमेश्वर के सहयोग एवं शक्ति से है इसलिए उसका कर्तापन ईश्वराधीन है। जीवात्मा को नवीन कर्म करने की शक्ति एवं सामग्री पूर्वकृत कर्म संस्कारों की अपेक्षा से ही प्राप्त होती है। इस शक्ति एवं सामग्री का सदुपयोग विवेक द्वारा करके वह सदाचरण में प्रवृत्त हो सकता है। इसमें वह स्वतन्त्र है। दुरुपयोग करने पर ईश्वर दोषी नहीं है।

मनुष्य की इसी स्वतन्त्रता के कारण उसे सन्मार्ग पर चलाने के लिए ही विधि-निषेध शास्त्रों की आवश्यकता है।

जीवात्मा यद्यपि कर्म करने में स्वतन्त्र है किन्तु पूर्व जन्मों में किये गये कर्मों के फलस्वरूप उसका जो स्वभाव बन गया है उसी के अनुसार वह कर्म करता है। इसलिए वह संस्कारों के अधीन है तथा इसी के अनुसार वह फल भोगने में भी परतन्त्र है। वह कर्म फलों के भोग के लिए ही शरीर धारण करता है।

जीवात्मा स्वयं अपने लिए कर्मफल की व्यवस्था नहीं कर सकता तथा परमात्मा भी उससे अलग कहीं स्वर्ग में बैठकर इसकी व्यवस्था नहीं करता। वह जीवात्मा के भीतर रह कर ही इसकी व्यवस्था करता है। इसलिए जीवात्मा इसमें भी परतन्त्र है। कर्मफल ईश्वर स्वयं देता है। विवेक जागृत होने पर वह सद् कर्म में प्रवृत्त हो सकता है। कर्म संस्कारों के अलावा इन्द्रियां, शरीर तथा सहकारी बाह्य कारणों की उपलब्धि में भी वह परतन्त्र है। शरीर की शक्ति भी सदा अनुकूल नहीं रहती। इसलिए वह परतन्त्र ही है। जीव के सुख-दुखों का सम्बन्ध उसके कर्मों से है। ईश्वर स्वयं सुख-दुःख नहीं देता। जीव ईश्वर का अंश होते हुए भी उसका ईश्वर से सम्बन्ध पिता पुत्र की भाँति है। ईश्वर उसके सुख-दुःखों में लिप्त नहीं होता।

इन विधि-निषेध शास्त्रों का सम्बन्ध केवल शरीर से है। इस जन्म में जो सुख-दुःख हम भोग रहे हैं। वह कुछ तो इसी जन्म में किये गये कर्मों के कारण है व कुछ पूर्वजन्म में किये गये कर्मों के फल भोग के कारण है। इन कर्मों का कभी क्षय

नहीं होता इसलिए जीवात्मा को इनके फल भोग के लिए निरन्तर जन्म धारण करते रहना पड़ेगा। मुक्तावस्था तक यही स्थिति रहती है।

(य) जीवात्मा और मन

जीवात्मा कभी मन से रहित नहीं होती। मन से रहित होना ही जीवात्मा का मोक्ष कहा जाता है। जीवात्मा कर्ता है व इन्द्रियाँ उसके उपकरण हैं जिससे वह कार्य करती है। शुद्ध आत्मा के साथ जब प्रकृति के तीन गुणों (सत्व, रज, तम) का संयोग होता है तो "चित्त" का आविर्भाव होता है। समष्टि में इसी को "महत्तत्व" कहा जाता है। इसी चित्त से बुद्धि उत्पन्न होती है। क्या ग्रहण करना है, क्या त्यागना है, क्या अच्छा है क्या बुरा है, यह निर्णय करना बुद्धि का कार्य है। इसी बुद्धि से "अहंकार" उत्पन्न होता है। अपनी सत्ता के बोध को ही अहंकार कहते हैं।

अहंकार से पांच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं तथा इसी से "मन" और इन्द्रियों का विकास होता है। चिन्तन, विचार, इन्द्रियों को प्रेरित करना, तर्क आदि मन के कार्य हैं। इन तन्मात्राओं से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, इन्द्रियों के पाँच विषय तथा मन, इन सोलह विकारों से युक्त जीवात्मा का स्वरूप है। यह जीवात्मा ही मन को प्रेरित करता है। जीवन जीवात्मा का गुण है। मन भी जड़ है जो जीवात्मा की शक्ति से कार्य करता है। मन और आत्मा का सम्बन्ध मोक्ष पर्यन्त रहता है।

पुनर्जन्म का कारण भी मन ही है तथा यह नये जीवन में भी साथ रहता है। मृत्यु पर सिर्फ पाँच भूत छूटते हैं जो जड़ हैं।

(क) जीवात्मा का लिंग निर्धारण

संस्कृत में "आत्मा" शब्द नपुंसक लिंग है। आत्मा न स्त्री है न पुरुष। स्त्री और पुरुष के रूप में जन्म लेने का आधार जीवात्मा से जुड़ी मान्याताएँ ही हैं। यह जीवात्मा भीतर से जैसी इच्छा करती है वैसे ही संस्कार उसके गहरे हो जाते हैं जो उसके व्यक्तित्व का निर्धारण करते हैं। किसी विशेष अनुभव की प्रतिक्रिया से इन मान्यताओं में आकस्मिक परिवर्तन भी आ सकता है या धीरे-धीरे भी परिवर्तन होता है। ये मान्यताएँ अन्तःकरण से सम्बन्धित हैं।

जीवात्मा पुरुष रूप धारण करेगी या स्त्री रूप यह अहं-भाव की मान्यता पर निर्भर है। उसमें जैसी इच्छा उमड़ेगी वैसी ही मान्यताएँ जड़ जमा लेंगी तथा वैसा ही लिंग निर्धारण भी होगा। बाल्मीकी, अजामिल, आम्बपाली, अंगुलिमाल ने अपनी मान्यताएँ बदलीं तो उनका व्यक्तित्व ही बदल गया। लिंग परिवर्तन भी ऐसे ही मान्यताएँ बदलने से होता है। जब कोई जीवात्मा अपने वर्तमान लिंग के प्रति गहराई से असंतुष्ट होती है या उसकी मूलभूत प्रवृत्तियों की दिशा ही बदल जाती है तो लिंग परिवर्तन समेत व्यक्तित्व में अनेक परिवर्तन हो सकते हैं। इसी से इस जन्म की नारी अगले जीवन में पुरुष और इस जन्म का पुरुष अगले जीवन में नारी बन सकता है। व्यक्तित्व में जो प्रवृत्तियाँ प्रधान हो जाती हैं, जीवात्मा का वही लिंग बन जाता है।

सामान्य क्रम में हर व्यक्ति में दोनों ही लिंगों सम्बन्धी कुछ प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं किन्तु प्रधानता किसी एक की ही होती है। विज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर उभय लिंगों का अस्तित्व होता है। नारी के भीतर नर सत्ता भी होती है जिसे "एनीमस" कहते हैं। इसी प्रकार नर के भीतर नारी की सूक्ष्म सत्ता भी रहती है जिसे "एनिमा" कहते हैं। प्रजनन अंगों के गह्वर में विपरीत लिंग का अस्तित्व भी होता है। किसी-किसी में विपरीत लिंगी व्यक्तित्व प्रबल हो उठता है। ऐसी स्थिति में शल्यक्रिया द्वारा परिवर्तित लिंग वाला व्यक्तित्व उभर आता है।

जिस व्यक्ति में नारी प्रवृत्तियों की प्रधानता होती है वह अगले जन्म में नारी बन जाता है तथा जिस नारी में पुरुष प्रधान प्रवृत्ति होती है वह अगले जन्म में लड़का बन जाता है। यह परिवर्तन मनोवृत्ति के परिवर्तन के परिणाम हैं। निम्न उदाहरणों से इसकी पुष्टि होती है।

(१) ब्राजील निवासी श्रीमती इडालारेन्स बारह बार बच्चों की माँ बन चुकी थी। उसकी सन्तान प्रजनन की सम्भावना क्षीण हो चुकी थी किन्तु उसकी लड़की इमीलिया को लड़की होने से घोर ग्लानि थी। उसने कहा मैं पुनः तुम्हारे गर्भ से पुत्र रूप में जन्म लेना चाहती हूं। उसने बीस वर्ष की उम्र में जहर खा लिया। कुछ ही दिनों बाद वह उसी माँ से पुनः पुत्र रूप में उत्पन्न हुई। मां-बाप ने उसका नाम 'पोलो' रखा। उसकी प्रवृत्तियाँ इमीलिया जैसी ही थीं।

(२) श्रीलंका की एक-दो वर्षीय लड़की ने बताया कि पूर्व जन्म में वह लड़का थी। परामनोवैज्ञानिकों ने खोज की तो पाया कि उसका दिया गया विवरण प्रामाणिक था। अपने पूर्व

जन्म में उसने 'तिजफरत्र' नामक लड़का होने की बात कही थी। उस लड़की में लड़के की सारी विशेषताएँ विद्यमान थीं।

(३) आस्ट्रेलिया की एक खिलाड़ी युवती एरिका का लिंग परिवर्तन ऐसे ही हुआ। सन् १९६६ में अठारह वर्ष की उम्र में वह बर्फ पर फिसलने की प्रतियोगिता में विश्व चेम्पियन बन गई थी। १९६७ में वह पुनः तैयारी कर रही थी किन्तु उसकी शारीरिक जाँच करने पर डाक्टरों ने बताया कि उसके भीतर का पुरुष व्यक्तित्व विकसित हो चुका है। अतः उसे लड़की वाली प्रतियोगिता में भाग लेने के अयोग्य ठहरा दिया गया। लड़की ने अपना आपरेशन करवा लिया। सात माह तक उपचार चलने के बाद वह पूर्ण विकसित लड़का बन गई। उसने 'रीनेट' नामक एक लड़की से १९७५ में विवाह कर लिया। १९७६ में वह एक लड़के का पिता भी बन गया।

(४) भारत के सोलन शहर के निवासी जीया लाल सुनार की तीसरी लड़की सुनीता के चार वर्ष की उम्र में आपरेशन के उपरांत लड़का बन जाने की भी घटना ताजी है। सितम्बर १९७८ के आरम्भ में उसका आपरेशन छः डाक्टरों ने उसके मूत्र मार्ग को पुरुषों के मूत्र मार्ग में बदलना आसान समझकर आपरेशन किया व वह लड़का बन गई।

(५) महा भारत में भी शिखण्डी का उदाहरण है कि वह पहले स्त्री थी व बाद में पुरुष बन गया।

व्यक्ति में उभय लिंगों के अस्तित्व के कारण ही भारतीय अध्यात्म ने हजारों वर्षों पूर्व अर्द्ध-नारीश्वर की बात कही थी जिसे विज्ञान आज सिद्ध कर रहा है। भारतीय अध्यात्म का आधार पूर्ण वैज्ञानिक है यह कई प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है।

४. स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर

(अ) स्थूल शरीर

यह आत्मा पाँच कोषों से आवृत है। ये कोष हैं अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय। जो इन पाँचों कोषों को पुनः आत्मा में लय कर देता है वही "मुक्त" कहलाता है। यह आत्म तत्व अव्यक्त है। शरीर, मन और बुद्धि व्यक्त है। आत्मा, मन, बुद्धि और शरीर का संयुक्त रूप ही मानव है। आत्मा जड़ और चेतन दोनों में व्याप्त है। इन दोनों का भेद इन इन्द्रिय विकास से है। जिनमें इन्द्रियों का विकास हो गया है वह चेतन है तथा जिनमें यह विकास नहीं हुआ है उसे जड़ कहा जाता है। यह अन्नमय कोष ही स्थूल शरीर है जिनका पोषण अन्न से होता है। ये पंचभूत स्थूल होकर स्थूल शरीर का निर्माण करते हैं। इसी स्थूल शरीर के कारण सम्पूर्ण बाह्य जगत प्रतीत होता है।

जन्म, मरण, बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था इसी शरीर की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। शरीर के समस्त कर्म एवं अनुभव इसी शरीर से होते हैं। चेतना का विकास भी इसी के माध्यम से होता है। अध्यात्म साधना का यही एक माध्यम है जिससे जीवात्मा को परमात्मा का ज्ञान होता है। इसलिए यह

शरीर किसी भी प्रकार तुच्छ नहीं है बल्कि सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसे मिथ्या कह कर इसका तिरस्कार भी नहीं किया जा सकता, न इसे व्यर्थ मानकर इसके साथ दुर्व्यवहार करना, उसे सताना, उसका दमन करना, उत्पीड़न करना उचित नहीं है।

इसको ईश्वर का वरदान समझ कर इसका सदुपयोग करना है। दुरुपयोग करने पर शरीर दोषी नहीं है। यह जीवात्मा का उत्तम सेवक, सहभागी एवं आज्ञाकारी सेवक है। जैसा इसे रखो रह जाता है। इसे महल में रखो या झोंपड़ी में, मन्दिर ले जाओ या मदिरालय में, यह सब में राजी है। कभी विरोध नहीं करता। इसलिए इसे सजा देना पागलपन ही है। शरीर के कार्यों का दायित्व मन पर है। उस पर नियन्त्रण आवश्यक है। अच्छा, बुरा सब इसी से होता है। स्वर्ग, नरक और मुक्ति में भी यही ले जाता है। सारी साधना मन को काबू में करने की है।

(ब) सूक्ष्म शरीर

इस स्थूल शरीर के पीछे जीवात्मा का एक सूक्ष्म शरीर भी है जो इस स्थूल शरीर का कारण है। यह सूक्ष्म शरीर दस इन्द्रियों, पाँच प्राण, पाँच सूक्ष्मभूत, अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार), अविद्या, काम और कर्म से बना है। यह चेतन शक्ति से संयुक्त होकर ही "जीव" कहलाता है। यही सूक्ष्म शरीर वासना युक्त होकर कर्मफलों का अनुभव करने वाला है। जब तक इसे अपने सत्य स्वरूप (आत्मा) का ज्ञान नहीं हो जाता तब तक यह अनादि काल तक जीवित रहता है। इसकी मृत्यु या नाश होने पर ही जीवात्मा मुक्तावस्था को

प्राप्त होती है। इसकी अभिव्यक्ति स्वप्न में होती है।

चिदात्मा पुरुष के सभी व्यापारों का कारण यह सूक्ष्म शरीर ही है। स्थूल शरीर इसी सूक्ष्म शरीर (लिंग-शरीर) के अधीन है अतः स्थूल शरीर के द्वारा किए गए समस्त कर्मों का दायित्व इसी पर है। मनुष्य मनःप्रधान लिंग शरीर की सहायता से कर्म करता है। मृत्यु के बाद भी यह मन के साथ ही रहता है। शरीर द्वारा किए गए समस्त पाप-पुण्य को यह अपने ऊपर ले लेता है इसी कारण इसी को पुनः जन्म लेना पड़ता है। मृत्यु के बाद जीवन में किए गए सभी अनुभव संस्कार रूप से इसी में संग्रहीत रहते हैं। यह सूक्ष्म शरीर ही जीवात्मा का स्व-शरीर है।

जब तक जीव दूसरा शरीर प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह पहले के शरीर के अभिमान को नहीं छोड़ता। जीव के जन्मादि का यही कारण है। इसी से हर्ष, शोक, भय, सुख, दुःख आदि का अनुभव होता है। इसी के द्वारा मनुष्य भिन्न-भिन्न देहों को ग्रहण करता और त्यागता है।

मृत्यु के समय यह जीवात्मा स्थूल शरीर को त्याग कर सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है तथा नये जन्म पर यह सूक्ष्म शरीर ही फिर स्थूल शरीर में प्रवेश करता है जो मृत्यु पर्यन्त बना रहता है। बार-बार जन्म लेकर यह जीवात्मा जीवन में प्राप्त अनुभवों के आधार पर उच्चता का अनुभव करती हुई निरन्तर विकास को प्राप्त होती है।

जीवात्मा का विकास भौतिक शरीर के बिना नहीं हो सकता इसलिए बार-बार जन्म लेना आवश्यक है। मृत्यु के बाद इन अनुभवों का पाचन होता है तथा नये अनुभव प्राप्त

करने के लिए यह फिर नया शरीर धारण करता है। भौतिक शरीर धारण करना ही जीवात्मा का अवतरण है, यही उसकी विकास प्रक्रिया का अंग है।

मृत्यु के समय केवल भौतिक शरीर ही नष्ट होता है। मनुष्य की इच्छाएँ, वासनाएँ, कामनाएँ, आकाक्षाएँ, भावनाएँ, अनुभव, ज्ञान, विचार आदि ज्यों के त्यों बने रहते हैं। इन सबका संग्रहीत भूत बीज ही हमारा यह सूक्ष्म शरीर है। ये ही जीवात्मा को आगे की यात्रा पर ले जाते हैं जिससे बार-बार जन्म लेना पड़ता है। जिस व्यक्ति के ये सर्व नष्ट हो जाते हैं उसको जाने की कहीं जगह नहीं बचती जिससे उसके नये जन्म का कोई कारण ही नहीं रह जाता।

यह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर का एक यन्त्र की भाँति उपयोग करता है। जब यह यन्त्र बेकार हो जाता है तो वह उसे फटे वस्त्र की भाँति फेंक कर नया स्थूल शरीर धारण कर लेता है।

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में भी सूक्ष्म शरीर की कल्पनाओं के दर्शन होते हैं। सूली के बाद जीसस का पुनर्जीवित होकर लोगों को चालीस दिन तक दिखाई देना उनका सूक्ष्म शरीर ही था।

मनुष्य के सारे अनुभव स्थूल शरीर के ही हैं। योगियों के अनुभव सूक्ष्म शरीर के हैं तथा परम योगियों के अनुभव परमात्मा का अनुभव है। स्थूल और सूक्ष्म शरीर अनेक हैं किन्तु परमात्मा एक है। सूक्ष्म शरीर पर रुकने वाले आत्माओं को अनन्त मानते हैं किन्तु जिन्हें आत्मानुभव हो जाता है वे कहते हैं—परमात्मा एक है, आत्मा एक है, ब्रह्म एक है। जिसने

इस सूक्ष्म शरीर को समाप्त कर दिया उसका जन्म-मरण नही होता ।

यह सूक्ष्म शरीर न्यूट्रोन नामक कणों से निर्मित होता है । ये न्यूट्रोन कण अदृश्य, आवेश रहित और इतने हल्के होते हैं कि इनमें मात्रा और भार नहीं के बराबर होता है । ये भी स्थिर नहीं रह सकते और प्रकाश की तीव्र गति से सदा चलते रहते हैं । यदि इन कणों को किसी दीवार की ओर छोड़ा जाय तो ये दीवार को पार कर अन्तरिक्ष में विलीन हो जाते हैं । कोई भी भौतिक वस्तु इन्हें नहीं रोक सकती । परामनोवैज्ञानिक खोजों के अनुसार यह सूक्ष्म शरीर किसी भी स्थान पर किसी भी परिणाम में अपने को प्रकट व पुनर्लय कर सकता है ।

वैज्ञानिकों ने इस विषय में सफल प्रयोग भी किए हैं और पाया है कि इस स्थूल शरीर के भीतर एक और शरीर भी है जिसे "सूक्ष्म शरीर" या "भाव शरीर" कहते हैं । इसका प्रकाश स्थूल शरीर के इर्द-गिर्द चमकता रहता है । परामनोवैज्ञानिकों ने इस सूक्ष्म शरीर को देखा ही नहीं बल्कि इसके चित्र भी लिए हैं। रूस के एक वैज्ञानिक दम्पति कीर्लियान तथा वेलेष्टिना ने मिलकर एक ऐसे कैमरे का निर्माण किया है जिससे मनुष्य व अन्य जीव जन्तुओं के सूक्ष्म शरीर के चित्र खींचे जा सके हैं । चैकोस्लोवाकिया के वैज्ञानिक ब्रेतिस्लाव ने परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया है कि 'जब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है तो उसके चारों ओर दिखाई देने वाला प्रभा मण्डल (ओरा) लुप्त हो जाता है । मृत्यु के समय उसकी लपटें और चिनगारियाँ शून्य में विलीन हो जाती हैं ।" यह सूक्ष्म शरीर हर जीवित प्राणी तथा पेड़ पौधों में भी होता है ।

पुनर्जन्म के समय गर्भ में यह जीवात्मा अणु शरीर में प्रवेश करता है। उस अणु शरीर की प्रकृति के अनुसार ही आत्मा उसमें प्रवेश करती है। श्रेष्ठ अणु में श्रेष्ठ आत्मा ही प्रवेश करती है एवं निकृष्ट अणु में निकृष्ट आत्मा। मृत्यु के बाद साधारण आत्माएँ तेरह दिन के भीतर नये जन्म की खोज कर लेती हैं। अधिक निकृष्ट एवं अधिक उच्च आत्माओं को लम्बे समय तक रुकना पड़ता है जिन्हें प्रेत, भूत या देवता आदि कहते हैं।

(स) कारण शरीर

इस सूक्ष्म शरीर के पीछे इसका कारण शरीर होता है जो सत्व, रज एवं तम गुणों से युक्त है। यही इस सूक्ष्म शरीर का कारण है। सत्व गुण शुद्ध है किन्तु वह रज और तम के साथ मिलकर संसार बन्धन का कारण होता है। प्रसन्नता आत्मानुभव, परम शान्ति, तृप्ति, आनन्द और परमात्मा में स्थिति ये सत्वगुण के धर्म हैं। क्रिया रूप विक्षेप शक्ति रजोगुण की है जिससे सनातन काल से विशेष क्रियाएँ होती हैं। इससे राग, द्वेष और दुःख उत्पन्न होते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, दूसरों के दोष ढूंढ़ना, अभिमान, ईर्ष्या, मत्सर ये रजोगुण के धर्म हैं। इन्हीं से जीव कर्मों में प्रवृत्त होता है। यह रजोगुण ही बन्धन का हेतु है तथा यही जन्म मरण का कारण है। अज्ञान, मूढ़ता, आलस्य, प्रमाद, जड़ता, निद्रा आदि तम के गुण हैं।

जाग्रत अवस्था का सम्बन्ध स्थूल शरीर से है, स्वप्न का सूक्ष्म शरीर से एवं सुषुप्ति का सम्बन्ध इस कारण शरीर से है

जिसे 'कर्म शरीर' भी कहते हैं। यह कारण शरीर ही बीज शरीर है जिससे अन्य दोनों शरीरों का निर्माण होता है। कारण शरीर सभी अर्द्धचेतन का भण्डार है जिसमें मनुष्य की सारी शक्तियाँ और संस्कार संग्रहीत रहते हैं। मनुष्य के सारे कार्य, गतियाँ, व्यवहार और परिस्थितियाँ इसी कारण शरीर के संग्रह से ही आती हैं। यही कारण शरीर मनुष्य का केन्द्र है। यह कारण शरीर सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसी से अन्य दोनों शरीर प्रभावित होते हैं।

इस कर्म शरीर को दिए गए सुझावों का दोनों शरीरों पर आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। इसे दैविक सुझाव देने पर वह ईश्वर हो जाएगा। इसी कर्म शरीर पर नियन्त्रण करके मनुष्य अपने भाग्य का निर्माण स्वयं कर सकता है। स्थूल शरीर का निर्माण सूक्ष्म शरीर से होता है जिसकी सामग्री कारण शरीर से प्राप्त होती है। इसकी अभिव्यक्ति की अवस्था सुषुप्ति है जिसमें बुद्धि की समस्त वृत्तियाँ लीन हो जाती हैं तथा सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। बुद्धि बीज रूप में ही स्थित रहती है।

इस कारण शरीर के भीतर जो आत्मा है वह सूर्य की भाँति है। वह स्थिर है। शरीर ही परिवर्तनशील एवं अस्थाई है।

इस कारण शरीर से मुक्त होने पर ही जीवात्मा का ब्रह्म में लय होता है। इसके रहते वह मुक्तावस्था का अनुभव तो कर सकता है किन्तु ईश्वर से पार्थक्य बना रहता है जो द्वैत की स्थिति है। अधिकांश जीवात्मा यहीं पर रुकी रहती हैं इसीलिए द्वैत को ही अधिक प्रतिष्ठा दी गई है। जीवात्मा की सर्वोच्च स्थिति तो अद्वैत ही है किन्तु उसे प्राप्त करना दुष्कर है। इसका अनुभव मात्र किया जा सकता है।

५. सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से भिन्न

(अ) सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से अलग करना

चूँकि सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से भिन्न है इसलिए कोई भी व्यक्ति अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से, योगिक क्रियाओं तथा अन्य थोड़ी-सी साधना से सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से अलग भी कर सकता है। कभी-कभी निद्रा, अचेतन अवस्था या रुग्ण अवस्था में भी यह भौतिक शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है। इस पर दिग्काल के बन्धन लागू नहीं होते। सूक्ष्म शरीर के अलग होने पर यह स्थूल शरीर से "रजत रज्जु" से बंधा रहता है। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं।

सूक्ष्म शरीर को अपने शरीर से बाहर निकाल कर पुनः अपने शरीर में प्रवेश कराना कठिन है। इसके लिए पूर्व तैयारी की आवश्यकता है किन्तु ऐसा करने से आत्मा व शरीर के बीच का जो तालमेल है वह टूट जाता है एवं आत्मा रूपी ऊर्जा की अनुपस्थिति में शरीर के कई कोष मृत हो जाते हैं जिससे स्थूल शरीर में विकृति आ जाती है तथा उसकी आयु भी कम हो जाती है। ऐसा करना अप्राकृतिक एवं अस्वाभाविक है।

सभी अस्वाभाविक क्रियाएँ शरीर को हानि पहुंचाती हैं। योग साधना करने वाले अधिकांश व्यक्ति इन्हीं अस्वाभाविक क्रियाओं को विधिपूर्वक न करने से रोगग्रस्त हो जाते हैं तथा इनका इलाज भी असम्भव है।

अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से अलग करने के कई उदाहरण हैं।

(१) वुडलैण्ड (अमेरिका) के डाक्टर जियोबर्नहाट ने एक ऐसा अनुभव किया जिसमें वे इच्छा मात्र से तुरन्त अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच गए। उन्होंने लिखा कि सन् १९७१ में उनका पुत्र वियतनाम के मोर्चे पर था। वह किसी खतरे में था। वह उन्हें पुकार रहा था। इसके साथ ही उनका शरीर हवा से भी हल्का हो गया और तुरन्त वुडलैण्ड से वियतनाम पहुंच गए।

वहाँ जाकर देखा उनका लड़का तम्बू में फँसा है व चारों ओर आग लगी है व उसके ऊपर एक लोहे का वजनी ट्रंक गिर पड़ा है जिसके नीचे वह दब गया है। उसने ट्रंक को अपने लड़के जॉन के ऊपर से हटाया और तम्बू के बाहर ले जाकर उसे खड़ा किया। इसके बाद उसका शरीर पूर्ववत् होने लगा आँखें खोलीं तो प्रतीत हुआ कि जैसे तन्द्रा टूटी हो। पास बैठी पत्नी ने अनुभव किया कि जैसे वे असामान्य व्यक्ति (एब्नार्मल) हैं। छः महीने बाद जब जान छुट्टी पर लौटा तो उसने उस अग्निकांड में फंस जाने व चमत्कारी ढंग से बचने की घटना सुनाई। यह उनका सूक्ष्म शरीर ही जॉन को बचाने गया था।

(२) दूसरा उदाहरण अमेरिका की विश्व विख्यात अभिनेत्री एलीजाबेथ टेलर का है। उसका अनुभव था कि उसके

गम्भीर आपरेशन के समय डाक्टरों ने अनुभव किया कि उसका शरीर निष्प्राण हो चुका है, साँस बन्द हो गई थी, नाड़ी डूबती जा रही है, हृदय भी धीरे-धीरे धड़क रहा था। जब वह स्वस्थ हुई तो उसने अपना अनुभव बताया, "मैंने अपना आपरेशन अपनी आँखों देखा है।" टेलर बेहोश थी। वह अपना आपरेशन कैसे देख सकती थी किन्तु उसने अनुभव किया कि वह अपने शरीर से बाहर होकर अपने ही शरीर को ऐसे देख रही थी जैसे वह किसी दूसरे का शरीर हो। डाक्टरों ने आपरेशन के बारे में कई प्रश्न किए तो उसने आपरेशन की प्रत्येक प्रक्रिया बता दी। वह उसका सूक्ष्म शरीर ही था।

(३) प्रसिद्ध मनोचिकित्सक विज्ञानी डा० थैयला मौस ने सिद्ध कर दिखाया कि, "कोई भी व्यक्ति अपनी चेतना को अपने शरीर से बाहर निकाल सकता है और पल भर में हजारों मील दूर जा सकता है।" शरीर के नियम बन्धनों से मुक्त मानवी चेतना को प्रमाणित करने के लिए डा० मौस ने कई घटनाओं का उल्लेख किया।

एक घटना १९०८ की है। ब्रिटेन के हाउस ऑफ लोर्ड्स के अधिवेशन में विरोधी दल के अविश्वास प्रस्ताव पर एक दिन मतदान होने वाला था। उसमें सत्तारूढ़ दल के एक सदस्य सर कार्नरास गम्भीर रूप से बीमार थे व सदन में उपस्थित होने के योग्य नहीं थे किन्तु वे सदन में अपने स्थान पर बैठे और मतदान करते देखे गए जबकि डाक्टरों का कहना था कि वे अपने बिस्तर से हिले भी नहीं थे।

(४) डा० मौस ने एक दूसरी घटना का उल्लेख किया। ब्रिटिश कोलम्बिया की विधान सभा का अधिवेशन चल रहा

था। उस समय एक विधायक चार्ल्स वुड बहुत बीमार थे। डाक्टरों के अनुसार उनके बचने की उम्मीद नहीं थी। वे बिस्तर से उठ भी नहीं पा रहे थे किन्तु सदन के सदस्यों ने उन्हें विधान सभा में उपस्थित देखा। वहाँ चुनाव फोटो लिया गया उसमें भी वे उपस्थित थे।

(५) विश्व विख्यात दार्शनिक, चिन्तक और मनोवैज्ञानिक डा० कार्ल जुँग ने तो स्वयं एक बार सूक्ष्म शरीर के बाहर आने का अनुभव किया था।

(६) अरविंद आश्रम की माँ बचपन् से ही अपना शरीर त्याग कर इधर-उधर विचरण किया करती थी।

(ब) परकाया प्रवेश

जिस प्रकार यह जीवात्मा अपने स्थूल शरीर को त्याग कर स्वतन्त्र रूप से कहीं भी विचरण कर सकता है उसी प्रकार यह किसी जीवित अथवा अन्य मृत शरीर में भी प्रवेश कर सकता है। जिसे "परकाया प्रवेश" कहते हैं। अन्य व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर यह अपना नाम भी बताता है तथा शरीर दूसरे नाम से है। योगियों के लिए यह सामान्य सी बात है। भागवत् में भी दस सिद्धियों का उल्लेख है जिनमें एक परकाया प्रवेश भी है।

पतंजलि ने भी परकाया प्रवेश का वर्णन किया है। हठ-योग में भी ऐसी विधियाँ हैं जिससे परकाया प्रवेश हो सकता है। स्वरोदय विज्ञान के अनुसार मणि-पूरक चक्र में अग्नि तत्व स्थित है। इस चक्र पर सदा ध्यान करने वाला

परकाया प्रवेश की सिद्धि कर सकता है। [illegible] के निरोध से भी परकाया प्रवेश सम्भव है। चन्द्रनाड़ी मनोमय शरीर की प्राण तत्व वाहिनी नाड़ी है। इसके विरोध से निद्रावृत्ति का निरोध हो जाता है और तब मनोमय शरीर भौतिक शरीर से बाहर जाकर अन्य देह में प्रवेश कर सकता है। कुछ मंत्रों के नित्य सहस्त्रबार पाठ करने से भी यह सिद्धि सम्भव है। पाश्चात्य में स्वप्न नियन्त्रण से भी परकाया प्रवेश की विधि बताई है। खेचरी मुद्रा द्वारा भी सिद्धि होती है। परकाया प्रवेश के निम्न उदाहरण हैं।

(१) आद्य शंकराचार्य के विषय में विख्यात है कि उन्होंने मंडन मिश्र की पत्नी से शास्त्रार्थ में विजय पाने के लिए राजा सुधन्वा (अमरूक) के मृत शरीर में प्रवेश कर कामशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था।

(२) श्री फेरेल १९३७ में एक उच्च सैनिक उच्च अधिकारी के रूप में ब्रिटेन से भारत आए थे। वे भारतीय कमांड के प्रधान सेनापति भी रहे थे। उन्होंने एक परकाया प्रवेश की घटना देखी। वे १९३९ में भारत बर्मा की सीमा पर तैनात थे।

उन्होंने देखा कि नदी में एक युवा की लाश बहती आ रही थी। एक बूढ़ा दाढ़ी वाला व्यक्ति उसे नदी से बाहर खींच रहा था। वह उसे नदी से निकालकर एक वृक्ष के नीचे ले गया वह युवा चलने लगा। उस सैनिक अफसर ने उस युवा को पकड़ मंगवाया और उससे पूछा तो उसने कहा, वह स्वयं वही बूढ़ा आदमी है। शरीर युवक का है। मैंने इसके शरीर में प्रवेश कर लिया है तथा मेरा बूढ़ा शरीर उस वृक्ष के झुरमुट

में पड़ा है। सैनिक अफसर ने उस बूढ़े के शरीर को मंगाकर देखा तो उसे महान् आश्चर्य हुआ। वह योगी थोड़ी देर बाद वहाँ से गायब हो गया।

(३) भारत में सन् १९५८ में उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के रसूलपुर जाटान गाँव में जसवीर नामक बालक की चेचक से मृत्यु हो गई थी जब वह चार वर्ष का था। उसके पिता चौधरी गिरधारी सिंह थे। उसकी मृत्यु के बाद शव को रात भर पड़े रखा व प्रातः जब दाह संस्कार करने जाने वाले थे तब उस बालक में अचानक चेतना का संचार हुआ और वह जी उठा किन्तु उसमें किसी दूसरी आत्मा ने प्रवेश कर लिया था। उसका व्यवहार बदल गया था।

वह आत्मा शोभाराम त्यागी की थी जिसकी उम्र २३-२४ वर्ष की थी। उसके दो लड़कियाँ व एक लड़का था। शोभाराम की मृत्यु उसी रात को ११-०० बजे एक दुर्घटना से हुई थी जसवीर शोभाराम जैसा ही व्यवहार करने लगा। उसने अपने पड़ोसियों को पहचान लिया। जसवीर कहने लगा, "मैं ब्राह्मण हूं, तुम लोगों के हाथ का बना खाना नहीं खाऊँगा। मुझे मेरी पत्नी के पास ले जाओ।" उसने अपने भाई, पत्नी और माँ को पहचान लिया। वह उन लोगों को उस स्थान पर भी ले गया जहाँ दुर्घटना से उसकी मृत्यु हुई थी।

(४) एक किसी लकड़ी के कारखाने की मशीन बन्द हो गई जिसे एक साधारण मजदूर ने ठीक किया था जो कुछ जानता ही नहीं था। उसके भीतर किसी मेकेनिक की आत्मा ने प्रवेश कर उसे ठीक किया। ठीक होने पर वह बेहोश हो गया। बाद में उसे पूछा तो उसने कहा वह इस बारे में कुछ नहीं जानता है।

६. मृत्यु का अनुभव

(अ) मृत्यु का भय

जो व्यक्ति शरीर को ही सब कुछ मानता है वह समझता है कि शरीर के नाश होने से जीवन भी नष्ट हो जाएगा किन्तु जीवन शरीर का ही नहीं है बल्कि जीवात्मा है जिसका शरीर के नाश होने से नाश नहीं होता। मनुष्य योनि में प्रथम जन्म से लेकर मोक्ष पर्यन्त की सम्पूर्ण अवधि इस जीवात्मा का जीवन है तथा यही उसकी सम्पूर्ण आयु है। जिस प्रकार दिन भर के श्रम के बाद मनुष्य को रात्रि-विश्राम की आवश्यकता होती है जिसे हम मृत्यु नहीं कहते उसी प्रकार शरीर का एक जीवन जीवात्मा का एक दिन है जिनमें किए गए श्रम से थक कर उसे विश्राम की आवश्यकता होती है। मृत्यु इस विश्राम की व्यवस्था है।

इस विश्राम काल में जीवात्मा अपनी थकान मिटाती है, जीवन में प्राप्त किए अनुभवों का पाचन करती है तथा नई ताजगी के साथ नये जीवन में प्रवेश करती है। शरीर का जीवन उस जीवात्मा के सम्पूर्ण जीवन की एक कड़ी है। शरीर का हर जीवन उस जीवात्मा की एक कक्षा है जिसे उत्तीर्ण कर वह अगली कक्षा में प्रवेश करता है। इस प्रकार बार-बार

शरीर धारण कर वह उन्नति करता हुआ अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है। यही उसकी वास्तविक मृत्यु है जिसके बाद ही उसका जन्म-मृत्यु से छुटकारा होता है। इसलिए शरीर की मृत्यु जीवात्मा के लिए अभिशाप नहीं बल्कि वरदान है। यदि जीवन और मृत्यु का चक्र नहीं होता तो जीवात्मा का कभी विकास नहीं हो सकता था। मनुष्य आदिम सभ्यता से ऊपर उठ ही नहीं पाता। जिसे जीवन की इस तारतम्यता का ज्ञान नहीं है वही इस शरीर की मृत्यु को अपनी मृत्यु समझकर भयभीत होता है।

मृत्यु में शरीर के अलावा कुछ भी नष्ट नहीं होता वह जीवात्मा पुनः नया शरीर धारण करके नये जीवन में प्रवेश करता है। नया वस्त्र पहनना, नये घर में रहना, नये स्थानों पर जाना, नया वातावरण देखना, नये लोगों से मिलना; नया अनुभव करना किसे अच्छा नहीं लगता। किन्तु जिसे इसका ज्ञान नहीं है वे ही रोते हैं और दुःखी होते हैं जबकि ज्ञानी इसका सहर्ष स्वागत करते हैं। जिस प्रकार अन्धकार में प्रवेश करने से भय लगता है उसी प्रकार ज्ञान के अभाव में ही मनुष्य मृत्यु से डरता है। अन्यथा भयभीत होने का कोई कारण ही नहीं है।

जो विद्यार्थी पूरी तैयारी करके परीक्षा में बैठता है वह प्रश्न-पत्र को देखकर कभी भी नहीं घबराता, ऐसे ही मृत्यु की पूर्व तैयारी करने वाला उससे नहीं घबराता। जो अपने जीवन काल में समस्त कर्त्तव्यों को पूर्ण कर चुका है, जिसने जीवन का पूरा सदुपयोग किया है, जिसका जीवन सदा पवित्र रहा है, जिसने सदा दूसरों का हित चिन्तन ही किया है, जो राग, द्वेष, घृणा, वैमनस्य, ईर्ष्या आदि की अग्नि में कभी नहीं जला है

उसे मृत्यु का भय नहीं होता। उसे मृत्यु एक सुखद अनुभव प्रतीत होती है।

जिसने जीवन को निरर्थक कार्यों में ही गँवा दिया है, जिसने अगले जीवन की तैयारी नहीं की वही मृत्यु से भयभीत होता है क्योंकि उसे पता ही नहीं है कि मृत्यु के बाद क्या होगा तथा अगला जीवन उसे कैसा मिलेगा ? ज्ञान होने पर उसका यह भय दूर हो जाता है।

जीवात्मा उस परम अस्तित्व का अंग है जिसका रूप सदा बदलता रहता है। जब उसे प्रकट होना होता है तो वह शरीर धारण करता है। शरीर नष्ट होने पर वह पुनः अप्रकट हो जाता है, स्वयं नष्ट नहीं होता। मृत्यु का अर्थ मिट जाना नहीं है। निर्माण, मोक्ष में भी मिटता नहीं, उस परम अस्तित्व के साथ एक हो जाता है, उसका हिस्सा बन जाता है। जन्म के बाद वह उस अस्तित्व से भिन्न दिखाई देता है जो उसी का घनीभूत रूप है किन्तु वास्तव में वह उससे सदा ही अभिन्न बना रहता है।

जीने की वासना ही मृत्यु के भय का कारण है। जो जितना वासनाग्रस्त होता है वह उतना ही भयभीत होता है। मृत्यु घाटे का सौदा नहीं है। मृत्यु के बाद ही जीवात्मा का नया जीवन नई चेतना से आरम्भ होता है। इस जन्म के सम्पूर्ण अनुभव, संस्कार रूप में जीवात्मा में विद्यमान रहते हैं जिससे अगला जीवन इससे अधिक उन्नत व सुखी रहता है। मुक्ति से पूर्व बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र से गुजरना परमात्मा का अभिशाप नहीं बल्कि वरदान है जिससे चेतना निरन्तर विकास को प्राप्त होती है तथा वही विकसित चेतना अन्त में मोक्ष को प्राप्त होती है।

बिना बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्र से गुजरे मोक्ष की सम्भावनाएँ ही समाप्त हो जाती हैं। जीवात्मा के पूर्ण विकास के लिए एक ही जन्म पर्याप्त नहीं है इसीलिए परमात्मा ने अनेक जन्मों की व्यवस्था की है। इसलिए मृत्यु को हेय मानना व उससे भयभीत होना परमात्मा में अविश्वास प्रकट करना है तथा उसकी अवमानना करना है।

मृत्यु से भयभीत होने वाला उसे टाल तो नहीं सकता बल्कि वह उसे और निमन्त्रण दे देता है। कहते हैं कि एक बार ब्रह्मा जी ने मौत को दो हजार आदमी मारकर लाने का आदेश दिया। जब वह वापस लौटी तो उसके साथ चार हजार आदमी थे। जब उससे जवाब तलब किया गया तो मौत ने कहा कि उसने तो दो ही हजार मारे थे। शेष तो मरने के डर से भयभीत होकर अपने आप मर गये और उसके साथ-साथ चल दिए।

(ब) मृत्यु क्या है ?

मृत्यु इस पृथ्वी की सबसे बड़ी माया (भ्रम) है। वास्तव में मृत्यु है ही नहीं। यह तो केवल जीवन की अवस्था का परिवर्तन है। जीवन का क्रम तो जारी रहता ही है। जीवन को शरीर तक ही सीमित मान लेने से मृत्यु का भ्रम होता है किंतु जीवन शरीर का नहीं जीवात्मा का है जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती। वह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने से उसका नाश नहीं होता। घड़े के फूटने से भीतर का आकाश नष्ट नहीं होता।

विज्ञान कहता है, "क्रोमोजोम्स की मृत्यु ही मनुष्य की मृत्यु है। ये क्रोमोजोम्स एक निश्चित अवधि तक ही सक्रिय रहते हैं।" किन्तु अध्यात्म कहता है कि मनुष्य एक भौतिक इकाई मात्र ही नहीं है बल्कि एक अभौतिक पदार्थ है जो मृत्यु के समय शरीर से निकलकर शून्य में चला जाता है एवं समय पाकर पुनः नया शरीर ग्रहण करता है। क्रोमोजोम्स भी उसी चेतना शक्ति से जीवित एवं मृत होते हैं।

अध्यात्म शरीर को मनुष्य नहीं मानता न शरीर की मृत्यु को मनुष्य की मृत्यु मानता है। शरीर उस मनुष्य का निवास गृह है जिसका वह मकान की भाँति उपयोग करता है। वह आत्म तत्त्व जो शरीर से निकलकर जाता है वही मनुष्य है जिसे "जीवात्मा" कहा जाता है। इसलिए शरीर की मृत्यु मनुष्य की मृत्यु नहीं है, न इस मृत्यु से जीवन का अन्त ही होता है। मृत्यु के बाद भी जीवन निरन्तर चलता रहता है। यह शरीर की मृत्यु कोई घटना नहीं है बल्कि एक प्रक्रिया है जिसका आरम्भ जन्म के साथ ही हो जाता है। जिस वस्तु का निर्माण हुआ है वह एक निश्चित अवधि के बाद अवश्य नष्ट होगी। वस्तु के निर्माण के साथ ही उसके ध्वंश की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है।

शरीर के साथ भी यही नियम है। मृत्यु के समय न शरीर नष्ट होता है न आत्मा। दोनों का केवल सम्बन्ध विच्छेद होता है। शरीर से ऊर्जा के निकल जाने पर वह निष्क्रिय हो जाता है जिससे उसको मृत्यु कहा जाता है। यह ऊर्जा उस आत्मा की ही है जिसका शरीर से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। यह जीवन ऊर्जा आत्मा के रूप में समस्त शरीर में व्याप्त रहती है।

(स) मृत्यु को सुखद बनाया जा सकता है—

मनुष्य स्वयं अपनी मृत्यु को सुखद एवं दुःखद बना सकता है। इसका निर्धारण स्वस्थ चिंतन एवं हितकारी कार्यों से ही होता है। मृत्यु का कोई भरोसा नहीं कि कब आ जाय, इसलिए मनुष्य को सदा हितकारी कर्म ही करते रहने से मन शांत एवं उद्वेग रहित रहता है। कर्मों का फल अवश्य मिलता है इसलिए अच्छे कर्म करने वाला कभी मृत्यु से भयभीत नहीं होता। उसमें एक आत्मविश्वास रहता है। वह निर्भीक एवं आश्वस्त रहता है।

मृत्यु के भय से बचने के लिए सद्विचार एवं सद्कर्म दोनों आवश्यक हैं क्योंकि दोनों का ही भिन्न-भिन्न फल होता है। इन दोनों की जीवन में साधना करने वालों को किसी देवी-देवता की उपासना, आराधना करने की आवश्यकता नहीं है। यही सबसे बड़ी आराधना एवं ईश्वर पूजा है जिसके लिए उसे संसार में भेजा गया है। इसके अभाव में अन्य सभी साधनाएँ अर्थहीन हैं। विवेकशील व्यक्ति कर्म एवं संस्कारों का ही परिष्कार करते हैं। मृत्यु से भयभीत होने की अपेक्षा उसकी सुनियोजित तैयारी आवश्यक है।

यह मानव जीवन किसी दैवी अनुकम्पा से प्राप्त नहीं हुआ है, न किसी के वरदान स्वरूप मिला है, न किसी देवता ने उपहार स्वरूप दिया है, न यह कोई आकस्मिक घटना है जो अनायास एवं निष्प्रयोजन ही घट गई, यह पूर्व के सैकड़ों जन्मों के शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है जिसे और अधिक उन्नत बनाने का कार्य इसी जन्म से किया जाना चाहिए अन्यथा अगला जीवन इससे भी निकृष्ट हो सकता है। उत्तम

विचार रखकर अथवा दूसरों का भला करके कोई दूसरे पर अहसान नहीं कर रहा है बल्कि वह अपने ही जीवन को श्रेष्ठ बनाने का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

ये उत्तम विचार और रचनात्मक कार्य स्वयं की ही उन्नति का कारण बनता है। यह शरीर अपनी भावनाओं, आकांक्षाओं, वासना आदि की पूर्ति का साधन ही नहीं है बल्कि उच्चता की ओर बढ़ने का साधन भी है। इसका उपयोग इसी के लिए किया जाना चाहिए। शरीर का पोषण साध्य नहीं, साधन है। साध्य का विस्मरण कर जो शरीर पोषण में ही रत रहते हैं वे अपने जीवन को व्यर्थ गंवा रहे हैं।

जो सदा दूसरों के अवगुण ही ढूंढ़ता है व निन्दा ही करता रहता है वह स्वयं का विकास नहीं पतन ही कर रहा है। इसके विपरीत दूसरों के गुणों को देखने वाला अपने गुणों का तथा सद्प्रवृत्ति का विकास करता है जो स्वयं की आत्मोन्नति का साधन बनता है।

(द) मृत्यु का अनुभव

सोने से पूर्व जिस प्रकार स्वप्न की छाया पड़ने लगती है उसी प्रकार मृत्यु के छः माह पूर्व उसकी छाया पड़ने लगती है। उस समय जागरूक व्यक्ति मृत्यु की भविष्यवाणी कर सकता है। पाँच-छः घंटे या एक दो दिन पूर्व तो इसके स्पष्ट संकेत दिखाई देने लगते हैं जिससे कई व्यक्ति अपनी मृत्यु की पूर्व सूचना दे देते हैं। जो नित्य सोते या उठते समय प्रार्थना का प्रयोग करते हैं या ध्यान करते हैं उन्हें भी अपने मत्यु के

समय का पता चल जाता है। निर्मल चित्त वालों को भी यह पता चल जाता है।

मृत्यु के समय मनुष्य को विशेष अनुभूति होती है जिससे वह घबरा जाता है व बेहोश हो जाता है। उसके प्राण इसी बेहोशी में निकलते हैं जिससे उसको पता ही नहीं चलता कि मैं मर गया हूं, मेरा शरीर मुझसे अलग हो गया है, अब मैं अशरीरी जीवात्मा मात्र हूं। जो भयभीत नहीं होता उसे अपने प्राण निकलने का बराबर ध्यान रहता है। यह जीवन भर की गई साधना व धैर्य के कारण ही सम्भव है, अन्यथा नहीं। जवानी में या दुर्घटना से मरने पर उसे अपनी मृत्यु का अनुभव होता है किन्तु नब्बे वर्ष का होकर मरने पर उसे इसका अनुभव नहीं होता क्योंकि अनुभव करने वाले यन्त्र पहले ही मर चुके होते हैं। मरे हुए व्यक्ति की स्मृति तीन दिन रहती है फिर वह भूल जाता है। कुछ की तेरह दिन रहती है।

आत्मा के निकलने पर भी शरीर की ऊर्जा तीन दिन तक उसमें से निकलती रहती है जैसे वृक्ष के काटने पर भी उसे सूखने में कई दिन लग जाते हैं। हृदय की धड़कन बन्द होने पर डाक्टर लोग मनुष्य को मृत घोषित कर देते हैं जिसे 'क्लीनिकल डैथ' (शारीरिक मृत्यु) कहा जाता है किन्तु जब शरीर की सम्पूर्ण ऊर्जा बाहर निकल जाती है तो उसे "बायोलोजिकल डैथ" (जैविक मृत्यु) कहा जाता है। इसमें तीन दिन लग जाते हैं। जैविक मृत्यु से पूर्व यदि विशेष विधियों द्वारा आत्मा का शरीर में पुनः प्रवेश कराया जा सके तो वह पुनः जीवित हो सकता है, जैसे पौधा जमीन से उखाड़ देने पर भी थोड़े समय बाद ही पुनः लगाने पर जीवित हो जाता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जीवात्मा शरीर को छोड़

देती है किन्तु शरीर यदि बेकार नहीं हुआ है तो कोई अन्य आत्मा उसमें प्रवेश कर जाती है जिससे वह मृत शरीर पुनः जी उठता है। ऐसे उदाहरण भी देखने में आए हैं जैसे पूर्व में जसवीर का उदाहरण दिया गया है।

मृत्यु पर स्थूल शरीर जैसा का तैसा रहता है केवल इंद्रियों का स्वामी जीवात्मा उसमें से निकल कर चला जाता है। उसके बिना इन्द्रियाँ व शरीर प्रकृति समूह मात्र रह जाता है। मृत्यु के समय मनुष्य के गत जीवन का सम्पूर्ण चित्र सविस्तार उपस्थित होता है। जीवन में जो मुख्य प्रकृति रही उस पर जीव का प्रभाव जम जाता है। इसी से यह निश्चित हो जाता है कि वह किस लोक में रहेगा। इसके बाद इस स्थूल शरीर के भीतर का छाया शरीर (ईथर शरीर) का स्थूल शरीर से सम्बन्ध टूटता है। मृत्यु के समय जीवन ऊर्जा सिकुड़ कर पहले एक केन्द्र पर एकत्र होती है फिर बाहर निकलती है।

शरीर में प्राण सिकुड़ कर पहले नाभि पर एकत्र होता है व फिर बाहर निकलता है। यह नाभि ही जीवन एवं मृत्यु का केन्द्र है। इस समय शरीर को अत्यन्त पीड़ा होती है किन्तु प्रकृति ने व्यवस्था कर रखी है कि उस समय मनुष्य बेहोश हो जाता है जिससे उस पीड़ा का उसे अनुभव नहीं होता। सजगता होने पर इस मृत्यु को देखा भी जा सकता है। मृत्यु के समय समस्त इन्द्रियां, प्राण तथा अन्तःकरण के लिंग में एक हो जाने पर हृदय के अग्रभाग में प्रकाश हो जाता है किन्तु मनुष्य बेहोशी के कारण उसे देख नहीं पाता।

शरीर एक निश्चित अवधि तक ही सक्रिय रहता है किन्तु व्यक्ति की वासनाएँ पूरी न होने से वह और जिन्दा रहना

चाहता है। ऐसे व्यक्ति को मृत्यु के समय संघर्ष करना पड़ता है तथा उसे प्रेत योनि अवश्य भोगनी पड़ती है।

शरीर की आयु निश्चित है किन्तु स्वास्थ्य के नियमों का पालन करके उसे थोड़ी बढ़ाई भी जा सकती है। सामान्यतया शरीर के व्यर्थ हो जाने पर ही जीवात्मा उसे छोड़ती है। स्वस्थ आदमी पहली ही बीमारी में मर जाता है किन्तु अस्सी साल तक जीवित रहने वाले का मरना भी मुश्किल हो जाता है जिसकी वासना जितनी तीव्र होगी, भोगने की जितनी अधिक इच्छा होगी उसकी उम्र भी लम्बी होती है। कर्मफल भोग शेष रहने पर भी लम्बी उम्र होती है। जिन्दगी भर बीमार रहने वाले का भी मरना मुश्किल हो जाता है।

मृत्यु के समय जो लोग वहाँ उपस्थित हों उन्हें शान्त, मौन और भक्तिभाव से रहना चाहिए ताकि मरते हुए प्राणी के गत जीवन के चित्र-पट दर्शन में किसी प्रकार की बाधा और क्षोभ न हो। जोर-जोर से रोने-पीटने और शोक करने से उस जीव के ध्यान की एकाग्रता भंग हो जाती है। मरते जीव को जिस शांति के द्वारा सुख और सहायता मिले उस शांति को अपनी स्वार्थ हानि के दुःख से भंग करना बड़ा अनुचित है। इस समय धर्म ग्रन्थों का पाठ या ईश्वर की प्रार्थना आदि से उसे लाभ मिलता है। हिन्दुओं में इस समय गीता सुनाने की प्रथा है।

मृत्यु के समय उसके जीवन की पूरी फिल्म उसके सामने

आ जाती है तथा अपना ही चित्त उसे स्पष्ट रूप से जीवन में किए गए सभी अच्छे बुरे कर्मों को स्पष्ट रूप से देखता है जिससे उसे पश्चाताप होता है। कुछ लोगों को ऐसा भी अनुभव होता है कि काले रंग वाले विकराल आकृति के यमदूत उसे पकड़कर ले जा रहे हैं व यमराज के सामने प्रस्तुत करते हैं।

चित्रगुप्त यमराज के सामने उसके अच्छे-बुरे कर्मों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं। फिर वह जिस लोक का अधिकारी होता है उस लोक में भेज दिया जाता है। थियोसॉफी ने भी इसे स्वीकार किया है। किन्तु जो संसार छोड़ना नहीं चाहता उसी को पकड़ कर ले जाया जाता है।

७. मृत्यु के बाद का जीवन

(अ) जीवात्मा का शरीर से मोह

जिस शरीर रूपी घर में यह जीवात्मा सत्तर-अस्सी वर्ष रह जाती है तथा जिसे वह अपना घर समझने लगती है तो उसका उसके प्रति इतना मोह हो जाता है कि वह आसानी से उसे छोड़ना नहीं चाहती। फिर परिवार सम्पत्ति आदि का मोह भी बाधा बन जाता है।

ऐसी स्थिति में मनुष्य मरते समय बहुत घबराता है तथा उसके प्राण किसी मोह में फँसे होने के कारण शरीर को छोड़ते नहीं। जिसका मोह जितना अधिक होता है उतनी ही उसे शरीर छोड़ने में वेदना होती है। शरीर व्यर्थ हो चुका है एवं जीवात्मा उसे छोड़ना नहीं चाहती, ऐसी स्थिति में काफी समय तक उसे जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष करना पड़ता है।

उस समय उसके परिजन इस मोह को छुड़ाने के लिए उसके सभी परिजनों को बुला लेते हैं जिससे उसकी उनसे मिलने की इच्छा शान्त हो जाए। मोह भंग करने के लिए उसे गीता भी सुनाई जाती है। उसके सामने गऊदान, एकादशी व्रत करना, गायों को घास डालना, दान-पुण्य करना आदि का

संकल्प भी किया जाता है। अक्सर देखा गया है कि ऐसा करते ही जीवात्मा फौरन शरीर छोड़ देती है।

जीवात्मा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है जो शरीर की मृत्यु के बाद भी उससे अलग होकर जीवित रहता है तथा अपने स्थूल शरीर के समीप ही खड़ा होकर अपने मृत शरीर को इस प्रकार देखता रहता है जैसे वह किसी अन्य के शरीर को देख रहा हो। वह उस शरीर में पुनः प्रवेश नहीं कर सकता किन्तु मोहवश उसे छोड़कर जाता भी नहीं।

काफी समय तक तो उसे विश्वास ही नहीं होता कि वह मर गया है। उसे अपनी मृत्यु का विश्वास दिलाने के लिए शव को दाह संस्कार के लिए जब जब उठाते हैं तो उसके परिजन रोना-धोना करते हैं। यह जीवात्मा कभी शरीर के प्रति मोह वश श्मशान तक जाता है तथा अपने ही शरीर को जलते हुए देखता है तो उसे विश्वास हो जाता है कि वह मर गया है तथा इसके बाद ही वह अपनी अगली यात्रा पर निकल जाता है।

(ब) दाह संस्कार

हिन्दुओं में मृत शरीर के दाह संस्कार की प्रथा है। इसमें भी सभी परिजनों का सम्मिलित होना एक धार्मिक कृत्य मानकर आवश्यक माना जाता है। सभी के सामने परिजन शव को चिता में रखते हैं तथा उसका ज्येष्ठ पुत्र उसमें अग्नि देता है। वही ज्येष्ठ पुत्र अन्त में कपाल क्रिया करता है जिसका अर्थ है कि अन्य अंगों के जल जाने पर भी मस्तिष्क में उसकी

चेतना रह जाती है जिससे मुक्ति दिलाना है। दाह संस्कार के पीछे दूसरा कारण यह भी है कि स्थूल शरीर के मृत होने पर भी उसके भीतर का छाया शरीर (दूथरिक बॉडी) उसके आस-पास मंडराता रहता है तथा ३६ घंटे के भीतर यह जीवात्मा उसको भी मृतवत् छोड़कर उसमें से निकल जाती है।

दाह संस्कार करने पर यह उसी के साथ नष्ट हो जाता है। यदि मुर्दे को गाड़ दिया जाए तो वह उस कब्र के ऊपर मंडराता हुआ धीरे-धीरे नष्ट होता है क्योंकि स्थूल शरीर के प्रति जो उसका आकर्षण था वह समाप्त हो जाता है। इसलिए मुर्दे को गाड़ने की अपेक्षा उसका दाह संस्कार करना अधिक अच्छा है। दाह संस्कार के पीछे हिन्दुओं की यही धारणा है।

दूसरी बात यह भी है कि हिन्दू आत्मा को ही महत्त्व देते हैं। शरीर का महत्त्व तभी तक है जब तक कि उसमें आत्मा है। आत्मा निकल जाने पर शरीर मिट्टी के समान है किन्तु आत्मा का उससे मोह रह जाने के कारण ही उसका विधिवत् दाह-संस्कार किया जाता है। उसे मिट्टी मानकर फेंका नहीं जाता। इसमें जल्दी भी की जाती है जिससे जीवात्मा को अधिक समय तक उस शरीर के आस-पास भटकना नहीं पड़े एवं शीघ्र ही अपनी अगली यात्रा आरम्भ कर दे। यहाँ तक कि तीसरे दिन उसकी अस्थियाँ भी गंगा या अन्य पवित्र नदी में प्रवाहित कर दी जाती हैं।

(स) जीवात्मा का घर में निवास

जीवात्मा का स्थूल एवं छाया शरीर के नष्ट हो जाने पर

पर भी उसका उसके घर एवं परिवार जनों से मोह बना रहता है जिसे छोड़ने में उसे थोड़ा समय लगता है। सामान्य आत्माएँ मृत्यु के बाद शीघ्र ही नया गर्भ खोज लेती हैं किन्तु कुछ को तीन दिन, तेरह दिन, एक वर्ष या तेरह वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

कुछ को इससे भी अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। हिन्दुओं की यह मान्यता है कि यह जीवात्मा तेरह दिन तक घर में ही रहती है। इसके बाद वह प्रेत योनि में रहती है। इस प्रेतयोनि से उसकी मुक्ति के लिए तेरह दिन के बाद भी कई प्रकार के क्रिया कर्म किए जाते हैं जिससे वह प्रेतयोनि से मुक्ति पाकर आगे की यात्रा में निकल जाती है।

तेरह दिन तक उस जीवात्मा का घर में निवास मानकर उसके लिए बारह दिन तक शोक मनाते हैं, गरुड़ पुराण सुना कर उसे उस अशरीरी दुनिया की सूचना दी जाती है जिससे वह अपरिचित है जीवात्मा के प्रतीक के रूप में उसके कमरे में जल से भरा हुआ कलश भी रखते हैं जिसे 'श्रावणी का कलश' कहते हैं तथा उस घर में घी का दीपक जलाते हैं क्योंकि उस सूक्ष्म शरीरधारी जीवात्मा को तेज प्रकाश असह्य होता है। दसवें, ग्यारहवें एवं बारहवें दिन उसका क्रिया कर्म एवं पिण्ड-दान भी किया जाता है जिससे यह जीवात्मा तृप्त होती है।

तेरहवें दिन उस जीवात्मा को विदाई दी जाती है। उस समय उस श्रावणी के कलश को किसी पीपल के पेड़ के नीचे जाकर रख आते हैं तथा आते समय पीछे मुड़कर भी नहीं देखते वरना वह जीवात्मा फिर उसके साथ घर पर आ जाती है।

पीपल में देवताओं का निवास माना जाता है इसलिए उस जीवात्मा को उनके पास ले जाकर छोड़ आते हैं जिससे वह प्रेतयोनि में न पड़े। उस दिन गरुड़ पुराण की भी समाप्ति कर दी जाती है तथा वहाँ से लौटकर घर में ढोल बज जाता है जो शुभ का प्रतीक है। इसी दिन उत्तराधिकार की रस्म अदा की जाती है। बारह दिन तक जीवात्मा का घर में निवास मानकर अन्य उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया जाता।

(द) जीवात्मा का सूक्ष्मलोक में प्रवेश

जैसे ही जीवात्मा अपना स्थूल शरीर छोड़ती है उसका नये लोक में प्रवेश होता है। यह लोक इस स्थूल लोक से सूक्ष्म है तथा जीवात्मा भी अपने सूक्ष्म शरीर से ही इसमें प्रवेश करती है। इस लोक का उसे पूर्व अनुभव नहीं है न इसकी प्रकृति से परिचित ही है। इस लोक का विस्तार इस स्थूल लोक से भी अधिक है। वहाँ जीवात्मा का केवल भौतिक शरीर ही नहीं होता, न कोई भौतिक साधन सुविधाएँ ही होती हैं बाकी सब कुछ होता है।

यहाँ उसके सगे-सम्बन्धी, मित्र आदि सभी मिल जाते हैं यदि उनका पुनर्जन्म नहीं हुआ है अथवा आगे के लोकों में उनकी गति नहीं हुई है। इस लोक में प्रवेश करने के बाद इस संसार की स्मृति उसे थोड़े समय रहती है, फिर वह भूल जाता है, जिस प्रकार स्वप्न टूटने पर थोड़े समय ही उसकी स्मृति रहती है। मृत्यु स्वप्न टूटने के समान ही है तथा इसके बाद यह संसार स्वप्नवत् ही ज्ञात होने लगता है। नये लोक में

प्रवेश के बाद वह इस संसार की सभी सुखद एवं दु:खद अनुभूतियों से मुक्त हो जाता है।

जिस प्रकार घर छाड़कर विदेश जाने वाले को घर की याद सताती रहती है तथा नये वातावरण में जमने में उसे थोड़ा समय लगता है उसी प्रकार मृत्यु के बाद नये वातावरण में जमने में उसे थोड़ी कठिनाई होती है। यदि पीछे घर का मोह उसे छुड़ा दिया जाए तो वह अपने नये स्थान पर शीघ्र ही सामंजस्य बिठा लेता है। इस पुराने घर से मोह छुड़ाने के लिए भारत ने कई प्रयोग किए हैं तथा पूरा का पूरा मृत्यु शास्त्र विकसित किया। तिब्बत में भी इसके कई प्रयोग हुए हैं।

मृत्यु के समय यह जीवात्मा स्थूल शरीर सहित समस्त स्थूल लोक एवं स्थूल पदार्थों का त्याग कर देता है। केवल इस जन्म में किए गए सभी शुभाशुभ कर्मों के संस्कार स्मृतियाँ, अनुभव, कर्म आदि की गठरी बाँध कर अपने साथ ले जाता है। इन्हीं से जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर बनता है जो उसका स्वशरीर है।

इस जीवात्मा के एक नहीं बल्कि सात शरीर हैं जिसका निर्माण उसकी घनता के आधार पर हुआ है। सबसे स्थूल यह स्थूल शरीर था जो छूटा है। अन्य छ: शरीर अभी विद्यमान हैं। जीवात्मा द्वारा की गई प्रगति के अनुसार ये छ: शरीर भी क्रम से छूटते जाते हैं तथा ज्यों-ज्यों अधिक घनत्व वाले शरीर छूटते जाते हैं त्यों-त्यों जीवात्मा हल्की होकर आगे के लोकों में गमन करती जाती है। सातों शरीर नष्ट होने पर ही वह मुक्त होकर परमात्मा में लय होने का अनुभव

करती है। इसलिए प्रत्येक शरीर का छूटना उसकी प्रगति का सूचक है।

कुछ व्यक्ति इसी जन्म में साधना द्वारा सातों शरीरों को नष्ट कर देते हैं जिससे वे मृत्यु के बाद सीधे ही मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं।

उनका अन्य किसी लोक में गमन नहीं होता ऐसे व्यक्ति "जीवन्मुक्त" कहलाते हैं। जीवात्मा का यह सूक्ष्म शरीर मुक्ति पर्यन्त बना रहता है तथा इसी के द्वारा वह विभिन्न लोकों में गमन करता है। सूक्ष्म शरीर के छूट जाने पर नया शरीर ग्रहण नहीं हो सकता। यह सूक्ष्म शरीर ही पुनर्जन्म ग्रहण करता है।

मृत्यु के बाद जीवात्मा स्थूल शरीर को त्याग कर सर्व-प्रथम जिस सूक्ष्म लोक में प्रवेश करती है उसे "कामलोक" या "प्रेत-लोक" कहते हैं। यह स्थूल लोक से कम घना किन्तु अन्य लोकों से अधिक घना होता है। जिन जीवात्माओं पर अशुभ कर्म संस्कारों का भार अधिक होता है उनका घनत्व अधिक होने से ये इसी लोक में रुक जाती है। उत्तम जीवात्माएँ हल्की होने से वे शीघ्र ही इसे छोड़कर आगे के इससे भी सूक्ष्म लोकों में चली जाती है।

जीवात्मा के सात शरीरों की गति उन्हीं के अनुकूल लोक में होती है। इस प्रेत लोक में जीवात्मा को अपने कर्मों एवं वासना के अनुसार सुख दुःखों की अनुभूति होती है। इस लोक में कष्ट झेलकर जीवात्मा शुद्ध होती है तथा शुद्ध होकर वह इससे मुक्त होकर आगे के लोक में प्रवेश करती है जो इससे अधिक सूक्ष्म है। प्रेतात्मा का लिंग शरीर भी सात परतों

वाला होता है जिसमें यह प्रेत बन्द रहता है। उनके नष्ट हुए बिना उसकी इस लोक से मुक्ति नहीं हो सकती।

प्रत्येक परत में वह थोड़े समय रहता है फिर वह उसे छोड़ कर मुक्ति की ओर बढ़ता है। साधारण जीव अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार पाँच से पचास वर्ष तक रहता है। जिनकी आत्मोन्नति अधिक हो गई है उनकी ये परतें शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं जिससे वह अगले लोक में शीघ्र ही चला जाता है। जो उपयुक्त आहार-विहार से अपना जीवन शुद्ध रखता है तथा जिसकी वासना मंद रहती है वह शीघ्र ही स्वर्ग लोक पहुंच जाता है। बीच के लोकों का उसे ज्ञान भी नहीं रहता। जिसकी पाशविक वृत्तियाँ रही हैं वे इस प्रेत लोक के अनुकूल खण्ड में ही जाएँगे।

अकाल मृत्यु, कत्ल, आत्महत्या, दुर्घटना, युद्ध में मरने वालों के लिए अलग नियम हैं। यदि वे जीव शुद्ध हैं, यदि लोकहित में अपने प्राणों का उत्सर्ग किया है तो उनकी विशेष रक्षा होती है। उनकी जितनी उम्र बाकी रह गई है उतने समय वे आनन्ददायक निद्रा में रहते हैं किन्तु अन्य लोगों को होश बना रहता है। बहुतों को मरते समय की बातों का विस्मरण नहीं होता। वे कामलोक की गहरी परत में ही रहते हैं।

आयु समाप्त होने पर वे कामलोक में जाते हैं। वे उस मृत्यु की पीड़ा का बार-बार अनुभव करते हैं। ऐसी मृत्यु किसी बुरे प्रारब्धवश ही होती है। जीव की सभी आशा, तृष्णा, राग, द्वेष उसमें रहते हैं इसी से वह दूसरों को देखता भी है तथा उनके कार्यों में हस्तक्षेप करता है।

अन्य सहायक उन्हें आगे जाने में सहायता करते हैं किन्तु इन प्रेतों के यह समझ में नहीं आता। ये प्रेत दूसरे मनुष्यों के शरीर अपने वश में करके नये कर्म करते रहते हैं जिनका फल उन्हें भविष्य में अवश्य भोगना पड़ता है। यह अकाल मृत्यु बुरी समझी जाती है। जब यह जीव पुनः जन्म लेता है तो ये ही वृत्तियाँ बीज रूप में विद्यमान रहती हैं। इस प्रकृति के कोश के नाश होने पर ही उसकी आगे के लोक में गति होती है।

हिन्दुओं में जीवात्मा की इस प्रेतयोनि से मुक्ति के लिए अनेक कर्म किए जाते हैं जिनमें वार्षिक श्राद्ध, गया श्राद्ध आदि हैं तथा अन्तिम श्राद्ध बद्रीनाथ में किया जाता है।

इसके बाद यह माना जाता है कि वह जीवात्मा प्रेतयोनि से मुक्त होकर अगले लोक में चली गई है अथवा उसका पुनर्जन्म हो चुका है। ऐसा देखा भी गया है कि जिसके ये श्राद्ध कर दिए जाते हैं वह जीवात्मा फिर किसी घर वाले को नहीं सताती, न किसी के शरीर में आती है। ये प्रेतयोनि थोड़ी बहुत सभी को भोगनी पड़ती है। केवल जीवन्मुक्त ही इससे वंचित रहते हैं।

जीवात्मा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। शरीर की मृत्यु पर भी जीवात्मा जीवित रहती है। जो लोग मृत्यु के मुख से वापिस लौटे हैं उन्होंने जो वर्णन किया है डाक्टरों ने उसका निष्कर्ष निम्न प्रकार निकाला है—

"मृत्यु के बाद मृतक स्वयं अपने को अपने भौतिक शरीर से अलग हवा में उठा हुआ पाता है। वह अपने सगे सम्बन्धियों को उसका शोक मनाते, रोते-कलपते स्पष्ट देखता है। वह

उनकी आवाजें भी सुनता है किन्तु उसकी आवाज कोई नहीं सुनता। वह अपने पार्थिव शरीर की अन्त्येष्टि होते भी देखता है।

अन्ततः उसे एक अन्धेरी गुफा में होकर जाने की अनुभूति होती है। फिर वह स्वयं को एक प्रकाश लोक में पाता है। यहाँ उसके मित्र, परिवार की सभी दिवंगत आत्माएँ उससे मिलती हैं और उसकी सहायता करती हैं। इस दिव्य लोक में उसे असीम आनन्द, प्रेम व सुख की प्राप्ति होती है। वह पुनः इस भौतिक शरीर में आना नहीं चाहता किन्तु किसी अज्ञात प्रेरणा से उसे पुनः आना पड़ता है।"

ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि मृत्यु के उपरान्त भी हमारी सूक्ष्म सत्ता विद्यमान रहती है तथा पुनर्जन्म के समय यही अपने उपयुक्त भौतिक शरीर में प्रवेश करती है।

पुनर्जन्म की भी कई घटनाएँ हैं जिसमें आत्माएँ अपने पूर्व जन्म का हाल बताती है। वे अपने नाते-रिश्तेदारों को भी पहचान लेती है। इन सबका यही अर्थ है कि मृत्यु सिर्फ शरीर की ही होती है। जीवात्मा बार-बार शरीर परिवर्तन करती है। सम्मोहन क्रिया द्वारा भी व्यक्ति को अपने पूर्व जन्मों में प्रवेश कराकर इस चेतना का हाल जाना जाता है। इससे भी इसका समर्थन होता है।

८. अन्तराल में भटकती आत्माएँ

(अ) अन्तराल की आत्माएँ

मृत्यु के बाद और पुनर्जन्म से पूर्व जीवात्मा को एक लम्बे समय तक शून्य अशरीरी रूप में भटकना ही पड़ता है। इस अवधि को "अन्तराल समय" (ड्रीम पीरियड) कहते हैं। इसकी अवधि हर जीवात्मा की भिन्न-भिन्न होती है जो सैकड़ों वर्ष भी हो सकती है व तीन या तेरह दिन भी। कुछ का पुनर्जन्म उसी समय हो जाता है। यह नया गर्भ जीवात्मा की इच्छा पर नहीं बल्कि अपने कर्म संस्कारों एवं कामना के अनुसार अपने आप मिलता है। वासना की तीव्रता इसका मुख्य निर्णायक है।

अन्तराल में तीन प्रकार की जीवात्माएँ रहती हैं—उत्कृष्ट, सामान्य एवं निकृष्ट। उत्कृष्ट आत्माओं को देवता तथा निकृष्ट को प्रेतात्मा कहते हैं। हिन्दू धर्म ने इसे भी "योनि" माना है। सामान्य आत्माएँ अपने कर्मों के अनुसार शीघ्र ही जन्म ग्रहण कर लेती है किन्तु देवात्मा एवं प्रेतात्मा को अपने अनुकूल गर्भ न मिलने से लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। देवात्मा का जन्म आवश्यकतानुसार ही होता है।

मनुष्य जैसा अनुभव और मानस इस संसार से लेकर जाता है वैसा ही अनुभव उसको अन्तराल में होता है। एक प्रकार से यह उसका प्रायश्चित का समय है जिसमें वह बुरे कर्मों का प्रायश्चित करता है तथा अच्छे कर्मों से आनन्द का अनुभव करता है।

देवात्मा सुख शान्ति का अनुभव करती है जिसे "स्वर्ग" कहा जाता है तथा प्रेतात्मा को वासना से ग्रस्त रहने के कारण दुःख व कष्टों का अनुभव होता है। क्योंकि वहाँ इनकी तृप्ति का कोई साधन नहीं होता। वासना की तृप्ति भौतिक शरीर से ही होती है जो उसके पास होता नहीं। इसी से उसे पीड़ा का अनुभव होता है। ये प्रेतात्माएँ वहाँ दुःख, घृणा, ग्लानि, पश्चाताप, द्वेष, ईर्ष्या में जलती रहती हैं। यह स्वर्ग व नरक की अनुभूति उसे अपने ही मानस द्वारा होती है।

अन्तराल में ये जीवात्माएँ न स्थिर होती हैं न गतिशील। वहाँ स्थान और समय भी नहीं होता। ये आत्माएँ शरीर नहीं होने से न खा सकती हैं न बोल सकती हैं। सूँघना, छूना, अंधेरे व प्रकाश का अनुभव भी उन्हें नहीं होता। सर्दी-गर्मी का भी अनुभव नहीं होता। अन्तराल में जीवात्मा का केवल मन, चित्त व अहंकार होता है जिसमें सभी जन्मों के संस्कार बीज रूप में रहते हैं। शरीर मिलने पर ही ये पुनः सक्रिय होते हैं।

यह वैसा ही है जैसे कार चलाने का अनुभव कार न होते हुए भी विद्यमान रहता है। ये आत्माएँ केवल सुन सकती हैं, देख सकती हैं किन्तु ये कोलाहल से दूर किसी सुनसान स्थान पर रहना पसन्द करती हैं। ये एक क्षण में अपने ही क्षेत्र में

कहीं भी पहुंच सकती है। इनका मन अधिक सक्रिय हो जाता है किन्तु कर कुछ नहीं सकती।

ऐसी कई जीवात्माएँ हमारे चारों ओर भी विद्यमान हैं तथा कई बहुत दूर चली जाती हैं। जिन जीवात्माओं की खाने पीने, बदला लेने की भावनाएँ एवं काम वासनाएँ बहुत तीव्र होती हैं वे किसी दूसरे के शरीर में प्रवेश कर अपनी वासनाओं की पूर्ति भी करती है। ये उपयुक्त अवसर पाकर चोरी भी करती है।

अन्तराल में ये जीवात्माएँ अच्छे बुरे कर्म नहीं कर सकतीं जिससे इनका विकास या पतन नहीं होता। अपने विकास के लिए उसे पुनः मनुष्य शरीर धारण करना पड़ता है। दैव योनि भी भोग योनि ही है। वहाँ से वह मोक्ष में नहीं जा सकती। मुक्ति लाभ के लिए मनुष्य जीवन ही सुअवसर है।

इन ज़ीवात्माओं का केवल सूक्ष्म शरीर ही होता है जो मोक्ष पर्यन्त बना रहता है। यह सूक्ष्म शरीर मन से अधिक प्रभावित होता है। यह सूक्ष्म शरीर तीन स्थानों पर एक साथ दिखाई दे सकता है।

(ब) जीवात्माओं से सम्पर्क

अन्तराल में भटकती हुई इन जीवात्माओं से सम्पर्क भी स्थापित किया जा सकता है। ये जीवात्माएँ भी स्थूल लोक के व्यक्तियों से सम्पर्क करने की सदा इच्छुक रहती है। आज दुनिया में कई ऐसे संगठन हैं जो इन जीवात्माओं से निरन्तर

सम्पर्क करते रहते हैं एवं उनसे उस लोक की जानकारी लेते रहते हैं।

ये जीवात्माएँ भी लोक कल्याण के लिए अपने ज्ञान को देना चाहती हैं एवं माध्यम ढूँढ़ती रहती हैं। ये या तो उपयुक्त गर्भ मिलने पर स्वयं शरीर धारण कर अपना ज्ञान देती हैं या किसी के शरीर में प्रवेश करके अपने ज्ञान को उसके माध्यम से सम्पादित करती हैं। प्लेनचेट या ऊझाबोर्ड के माध्यम से इन आत्माओं से सम्वाद भी किया जा सकता है।

दूसरा तरीका "माध्यम" का है। जीवात्मा से प्रत्यक्ष बातचीत के लिए किसी माध्यम को तैयार किया जाता है जिससे उसकी सारी जानकारी एकत्र की जाती है। देव या प्रेत आत्मा अपने ही अनुकूल प्रकृति वाले शरीर में प्रविष्ठ होती है।

सामान्यतया देवात्मा अपने ही रक्त वाले मनुष्यों के शरीर में ही प्रवेश करती है। अन्य उत्कृष्ट आत्माओं को बुलाने के लिए माध्यम को उसके अनुकूल बनना पड़ता है। धार्मिक व्यक्ति में प्रेतात्मा तथा दुष्ट व्यक्ति में देवात्मा का प्रवेश सम्भव नहीं है। हर आत्मा हर व्यक्ति के शरीर में प्रवेश नहीं कर सकती।

दिव्य आत्माओं के लिए दिव्य एवं सशक्त शरीर आवश्यक है। जो शरीर हमें मिला है उसका स्नायु संस्थान एक ही आत्मा की ऊर्जा को झेलने के लिए सक्षम है। यदि दूसरी आत्मा भी उसमें प्रविष्ठ होती है तो उसकी अतिरिक्त शक्ति को यह स्नायुमंडल सहन नहीं कर सकता जिससे वह व्यक्ति बड़ी बेचैनी अनुभव करता है। फिर अनायास शक्ति के आग-

मन से समस्त स्नायुमंडल झंकृत हो जाता है जिससे पागलपन जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, व्यक्ति भयभीत हो जाता है व उसकी मृत्यु भी हो सकती है। इस अतिरिक्त शक्ति को सहन करने के लिए विभिन्न साधनाओं द्वारा स्नायुतंत्र को सशक्त किया जाता है तब किसी जीवात्मा का प्रवेश कराया जाता है।

पात्र तैयार होने पर वह जीवात्मा स्वयं ही आने की इच्छुक रहती है। प्रेतों का आह्वान करने वाले श्मशान जगाते हैं, मंत्र सिद्ध करते हैं तथा अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करते हैं वरना यह एक खतरनाक खेल है। आदिवासियों में कई दुष्ट आत्माएँ प्रेत, वीर, सकोतरे आदि को पालने की भी विधियाँ हैं जिनसे वे इच्छित कार्य करवाते हैं।

जब किसी अन्य आत्मा का शरीर में प्रवेश होता है तो स्वयं की जीवात्मा सिकुड़ जाती है तथा बाहरी आत्मा का उस शरीर पर कब्जा हो जाता है।

ऐसी स्थिति में उसकी आवाज बदल जाती है, उसके हाव-भाव बदल जाते हैं, उसकी भाषा और शैली भी बदल जाती है। वह अपने को अन्य व्यक्ति बताने लगता है। बार-बार ऐसी आत्माओं को बुलाने पर उसका शरीर अभ्यस्त हो जाता है जिससे बेचैनी का अनुभव नहीं होता। प्रेतात्मा के आगमन पर वह भयभीत होकर मूर्छित भी हो जाता है तथा उसके निकलने पर वह शिथिल होकर काफी समय पड़ा रहता है।

(स) मन्त्रों द्वारा आवाह्न

मनुष्य ध्यान या प्रार्थना द्वारा अथवा विशेष प्रकार के

मन्त्रों द्वारा भी इन जीवात्माओं का आह्वान करता है जिससे ये किसी के शरीर में प्रविष्ठ होती है। ध्यान एवं प्रार्थना में व्यक्ति अहंकार रहित हो जाता है। जिससे उसका शरीर ग्राहक स्थिति में आ जाता है तभी वे आत्माएँ प्रविष्ठ होती हैं।

देवताओं के आह्वान का पूरा विज्ञान है। इनके लिए विशेष प्रकार का स्थान, धूप, दीप, नैवेद्य आदि रखकर विशेष प्रकार के मन्त्रों द्वारा आह्वान किया जाता है। मन्त्र इसका सशक्त माध्यम है। हिन्दुओं ने इस मन्त्र शक्ति पर विशेष कार्य किया है। प्रेतों के आह्वान के लिए मुस्लिम धर्म के मन्त्र काफी कारगर सिद्ध हुए हैं। हर आत्मा विशेष प्रकार के मंत्रों द्वारा ही प्रवेश करती है।

ये मन्त्र पूर्ण वैज्ञानिक विधि से निर्मित किए गए हैं तथा इन्हें सिद्ध भी किया जाता है तभी ये उपयोगी सिद्ध होते हैं। इन मन्त्रों में ध्वनि का आह्वान में विशेष महत्व है। मन्त्रों के और भी अनेक प्रयोग हैं। ये मन्त्र शरीर व अन्तराल की जीवात्माओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का सशक्त माध्यम हैं।

देवात्मा तथा प्रेतात्मा के लिए भिन्न-भिन्न मन्त्र हैं। आह्वान पर यदि देवात्मा अथवा प्रेतात्मा प्रसन्न होकर आती है तो वरदान सिद्ध होती है किन्तु अप्रसन्न होकर आने पर वे सर्वनाश भी कर देती है, अतः इनकी प्रसन्नता का सर्वाधिक ध्यान रखना पड़ता है। ये आत्माएँ अपने मान-सम्मान की अधिक इच्छुक रहती हैं। प्रेतात्माएँ आते ही खाने की मांग करती है तथा जो कुछ वे माँगे तत्काल देना पड़ता है।

देवात्मा के प्रवेश के बाद वह व्यक्ति अनुभव करता है कि मेरे भीतर कोई दूसरा ही बोल रहा है। मोहम्मद साहब को भी ऐसा ही अनुभव हुआ कि मेरे भीतर कोई दूसरा ही बोल रहा है। मोहम्मद साहब पढ़े लिखे न थे। किसी दिव्य आत्मा ने उनमें प्रवेश करके उनसे कुरान लिखवाई।

हजरत मूसा, विवेकानन्द आदि को भी ऐसा ही अनुभव हुआ। ये जीवात्माएँ अपने लोकों की सूचना भी देती हैं कि वे वहाँ कैसे रहती है? जिससे मनुष्य को उसकी जानकारी मिलती है। परलोक के बारे में मनुष्य के पास जो भी जानकारी है वह काल्पनिक या मनगढ़न्त नहीं है अपितु ऐसी ही आत्माओं द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर संग्रहीत की गई तथ्य पूर्ण सूचनाएँ हैं।

(द) ध्यान द्वारा ज्ञान

ध्यान के द्वारा भी मनुष्य परलोक की इन आत्माओं से सम्पर्क कर सकता है। ध्यान द्वारा जब मन की गतियाँ शान्त हो जाती हैं तो भीतर चेतना अपने पूर्ण ज्ञान के साथ प्रकट होती है। उस समय उसका अहंकार नष्ट हो जाता है जिससे वह उस दिव्य चेतना का ग्राहक बन जाता है। उस समय उसमें अतीन्द्रिय क्षमता एवं ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

ऐसे ज्ञान को ही "अयोरुषेय" कहा जाता है क्योंकि वह स्वयं का नहीं होता। ऐसी स्थिति गहरे ध्यान में उपलब्ध होती है। इस अतिन्द्रिय शक्ति से वह महानतम कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है तथा उससे उच्चकोटि का ज्ञान प्रकट

होता है। दुनिया के महानतम ग्रन्थ ऐसी ही स्थिति में प्रकट हुए ज्ञान के आधार पर निर्मित हुए हैं इसलिए इनको अपौरुषेय कहा जाता है।

ऐसे ही ज्ञान को ईश्वरीय ज्ञान कहते हैं जो व्यक्ति के माध्यम से ही उतरता है। इसी को ईश्वरीय कृपा, ईश्वरीय ज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान कुछ भी कहा जा सकता है। सामान्य सामान्य बुद्धि इतना कार्य नहीं कर सकती।

(य) जीवात्माएँ सहायता भी करती हैं

अन्तराल की ये जीवात्माएँ भूलोक वासियों की कई प्रकार से सहायता भी करती हैं। मनुष्य जो भी अच्छे बुरे कार्य करता है उसके पीछे इन जीवात्माओं का भी हाथ होता है। वह अकेला कोई भी श्रेष्ठ या निकृष्ट कर्म नहीं कर सकता क्योंकि उसकी शक्ति व ज्ञान सीमित होता है।

सन् १९६५ में भारत पाकिस्तान युद्ध के समय एक सैनिक टुकड़ी जम्मू कश्मीर की पहाड़ियों में रात को रास्ता भूल गई थी। उसे अग्रिम चौकी पर पहुंचना था। उस समय एक लेफ्टीनेण्ट की आत्मा ने उसको मार्ग बताया जो एक दिन पूर्व ही पीठ पीछे गोली लगने से मर गया था तथा उसका दाह संस्कार भी कर दिया गया था। ऐसा उसने खुद ने ही बताया। चौकी पर पहुंचाकर वह गायब हो गया। यह उसका सूक्ष्म शरीर ही था। उसकी पीठ पर गोली का निशान था।

स्थूल शरीर के घाव सूक्ष्म शरीर पर रहते हैं जैसे जीसस पुनर्जीवित हुए तो उनके हाथों में भी कीलों के निशान थे। यह उनका सूक्ष्म शरीर ही था।

उच्चकोटि के कलाकारों, संगीतज्ञों, कवियों, लेखकों, धार्मिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तियों, डाक्टरों, इन्जीनियरों, सैनिकों, मेकेनिकों, मोटर ड्राइवरों, ज्योतिषियों, वैज्ञानिकों, धार्मिक शिक्षकों, गणितज्ञों, भवन निर्माताओं, मूर्तिकारों आदि विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों को ये जीवात्माएँ सदा सहायता करती रहती हैं जिससे इनके कार्यों में अधिक श्रेष्ठता आती है।

किसी उलझन में फंसने पर ये प्रत्यक्ष रूप से सहायता को उपस्थित हो जाती है। कई जीवात्माएँ आपरेशन भी करती हैं। गणित की समस्याओं का हल करती है तथा लेखन कार्य भी करती है। किन्तु यदि इनका स्वयं का लक्ष्य भ्रष्ट तरीके अपना कर पैसा कमाना मात्र ही होता है तो ये इनकी सहायता नहीं करती जिससे ये कभी भी अपने कर्म में श्रेष्ठता प्राप्त नहीं कर सकते।

इसी प्रकार दुनिया के महानतम सेवा संगठनों को भी ये आत्माएँ सदा संरक्षण एवं सहायता करती रहती हैं जिससे ये निर्बाध गति से कुशलतापूर्वक कार्य संपादन करते रहते हैं जैसे स्काउटिंग, रैड क्रास, विभिन्न सेवा संगठन, थियोसॉफी एवं अन्य धार्मिक संगठनों को इनका संरक्षण प्राप्त है।

इस प्रकार निकृष्ट एवं दुष्ट प्रकृति के लोगों को भी उसी प्रकार की दुष्ट आत्माएँ सहायता करती रहती हैं जिससे वे अधिक दुष्ट कर्म करने में कुशलता प्राप्त कर लेते हैं। जैसे चोरों, जेब कतरों, गुण्डों, हत्यारों, आततायियों, शोषकों, रिश्वतखोरों आदि को निकृष्ट आत्माएँ सदा सहायता करती रहती हैं। अरविंद आश्रम की श्री माँ ने अपने गुह्य अनुभव के

आधार पर लिखा है कि हिटलर के आसपास सदा एक असुर सत्ता विद्यमान रहती थी जो प्रकट होकर नृशंस कार्यों में उसकी सहायता व प्रेरणा दिया करती थी।

यह सत्ता १९१६ में उसके सम्पर्क में आई। हिटलर का अन्त भी इसी सत्ता ने किया। नेपोलियन के आसपास भी ऐसी ही असुर सत्ता मँडराती रहती थी जो उससे सदा क्रूर कर्म कराती रही व अन्त में वही उसकी मृत्यु का कारण बनी। १४वीं सदी में रोम का शासक नीरो भी ऐसी ही सत्ता के चंगुल में फँसकर क्रूर कर्म करता रहा।

ये दुष्ट आत्माएँ अपने अनुकूल माध्यमों पर ही सवार होती हैं और यन्त्रमानव की तरह उससे दुष्ट कर्म करवाती रहती हैं। वैज्ञानिकों ने भी इसकी पुष्टि की है कि हमारे चिंतन के अनुसार मस्तिष्क के चारों ओर एक क्षेत्र-आइडियोस्फीयर में यह एकत्र हो जाता है। इसी के अनुसार वह चिंतन धारा स्वतन्त्र सत्ता का रूप धारण कर आकर्षित होकर व्यक्ति से भले-बुरे कर्म करवाती है।

ये आसुरी शक्तियाँ व्यक्ति के चिंतन प्रवाह के अनुसार ही आकर्षित होती है। शुभचिंतन, उच्च विचार, श्रेष्ठ विचार वालों की ओर श्रेष्ठ आत्माएँ ही आकर्षित होती हैं।

९. जीवात्मा का क्रमिक विकास

(अ) सूक्ष्म के स्थूल जगत्

इस सृष्टि का सबसे सूक्ष्म तत्त्व वह पारब्रह्म है जो क्रमशः स्थूलता को प्राप्त होकर इस जड़-चेतनमय स्थूल सृष्टि की रचना करता है। सूक्ष्म से लेकर स्थूल जगत तक इसके सात शरीर हैं जो प्रकृति के ही आवरण हैं जिनके पार उस परब्रह्म की सत्ता है। ये सात शरीर जड़ और चेतन दोनों में समान रूप से विद्यमान हैं किन्तु जड़ में ये सभी सुप्तावस्था में रहते हैं।

इनके विकास की सम्भावना नहीं है जबकि वनस्पति, पशु-पक्षी व मनुष्यों में क्रमशः अधिक विकसित होते हैं। मनुष्य में भी कुछ शरीर तो स्वाभाविक रूप से पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण उम्र के साथ अपने आप विकसित होते जाते हैं किंतु कुछ को साधना, श्रम, पुरुषार्थ, संकल्प आदि के द्वारा विकसित करना पड़ता है। जिसके सभी शरीर पूर्ण विकसित हो जाते हैं वही अन्त में परमात्मा का अनुभव करता है। जिनके सातों शरीरों का विकास इसी जन्म में कर लिया है वह जीवन्मुक्त होकर सीधा परब्रह्म में विलीन हो जाता है किन्तु जिसका अहंकार नष्ट नहीं हुआ है वह ब्रह्मलोक में रहकर उसके भोगों

को भोगता हुआ कल्पांत में ब्रह्म में विलीन हो जाता है। इन दोनों का पुनर्जन्म नहीं होता।

ब्रह्मलोक में जीवात्मा व परमात्मा की भिन्नता बनी रहती है। वहाँ वह अपने कारण शरीर से ही पहुंचता है। यह जीवात्मा की अन्तिम स्थिति है तथा ब्रह्म में लीन होना उसकी अन्तिम गति है। इसी को निर्वाण, मोक्ष, परमधाम, सायुज्य, मुक्ति आदि कहा जाता है। इस प्रकार यह शरीर एक घर है जिसके सातवें परकोटे में परमात्मा का निवास है। इस घर का मालिक वही परमात्मा है। अन्तिम स्थिति प्राप्त होने तक यह जीवात्मा इस स्थूल शरीर को हर जन्म में बदलती रहती है तथा नये जन्म से नये अनुभव लेकर क्रमिक विकास करती जाती है।

शरीर स्थिर आत्मा उसी ब्रह्म का अंश है जो सूक्ष्म है। वह दिखाई नहीं देता है। स्थूल होने से शरीर ही दिखाई देता है जैसे परमाणु दिखाई नहीं देता, पदार्थ ही दिखाई देते हैं।

जिस प्रकार स्थूल शरीर के सात आवरण हैं उसी प्रकार स्थूल जगत के भी सात आवरण हैं तथा प्रत्येक में प्रवेश के लिए भिन्न-भिन्न द्वार हैं। दो आवरणों के बीच में पूरे का पूरा लोक है जिसमें मृत्यु के बाद वे ही जीवात्माएँ प्रवेश करती हैं जिसकी वैसी ही आत्मिक उन्नति हुई है।

आगे के द्वार उसके लिए बन्द रहते हैं। जीवन्मुक्त पुरुषों को भी इन्हीं लोकों में होकर जाना पड़ता है किन्तु वे इनमें रुकते नहीं। इन लोकों के अधिकारी देवता इन्हें आगे के लोकों में पहुंचा देते हैं।

मृत्यु के बाद जीवात्मा अपने कर्मों एवं विकास के अनुसार निर्धारित लोक में ही प्रवेश करता है। आगे के लोक में उसकी गति न होने से वह उसी लोक में उसके अधिमानी देवता के नियन्त्रण व अनुशासन में रहता है तथा पुनर्जन्म तक उसी में रहकर सुख-दुःखों का भोग भोगता है। ये लोक भी क्रमशः एक-दूसरे से उन्नत एवं सूक्ष्म होते गए हैं जिनमें सबसे उत्तम ब्रह्मलोक है जहाँ जीवात्मा का स्थायी निवास बनता है। यहाँ जीवन्मुक्त पुरुष अपने कारण शरीर के साथ रहते हैं।

जीवात्मा का स्थूल शरीर से ब्रह्म तक की यात्रा में ये सात शरीर या सात आवरण बाधा स्वरूप है जिन्हें इस स्थूल शरीर में रहकर साधना द्वारा पार किया जाता है। सातवें को पार करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। योगी इनको एक-एक को पार करता है जबकि भक्त इनको एक साथ पार कर जाता है इसलिए भक्त को योगी से श्रेष्ठ माना जाता है। इन आवरणों में कुछ तरल हैं एवं कुछ सघन हैं। सघन को पार करने में विशेष प्रयत्न करना पड़ता है। प्रत्येक आवरण पार करने पर साधक को विशेष अनुभूतियाँ होती जाती हैं जिससे उसका व्यक्तित्व निरन्तर निखरता जाता है। ये आवरण हैं—

(१) स्थूल शरीर (फीजिकल बॉडी)।
(२) आकाश या भाप शरीर (इथरिक बॉडी)।
(३) सूक्ष्म शरीर (एस्ट्रल बॉडी)।
(४) मनस शरीर (मेण्टल बॉडी)।
(५) आत्मिक शरीर (स्प्रोच्यूअल बॉडी)।
(६) ब्रह्म शरीर (कोस्मिक बॉडी) और
(७) निर्वाण शरीर (बॉडीलेंस बॉडी।

इनमें प्रत्येक के सात-सात खण्ड हैं।

इन सात आवरणों में स्थूल, मनस, आत्मिक तथा ब्रह्म शरीर सघन हैं जिनको पार करने में काफी कठिनाई होती है। अन्य तरल हैं जिनको शीघ्र ही पार किया जा सकता है। ये सात आवरण सूक्ष्म होने के कारण इन्हें सात आकाश भी कहा जाता है तथा यह कहा जाता है कि ईश्वर सातवें आसमान में है। ये सात आसमान भौतिक जगत के नहीं बल्कि सूक्ष्म जगत के हैं जिनका ज्ञान की अवस्था में अनुभव होता है।

इन्हीं सात आवरणों के अनुसार सूक्ष्म सात लोक हैं। हिन्दुओं ने इनको भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम् कहा है। थियोसॉफी ने इनको भूलोक, भुवर्लोक (काम लोक), मनस लोक, स्वर्ग लोक, बुद्धि लोक, आत्मलोक तथा निर्वाण लोक कहा है। इनका विभाजन और भी कई प्रकार से किया गया है।

योग साधना द्वारा साधक इन शरीरों को एक-एक करके पार करता है किन्तु ब्रह्म के उपासक इनको एक साथ पार करके मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। ये शरीर उनके लिए बाधा नहीं बनते न मृत्यु के बाद उन्हें विभिन्न लोकों में रहना ही पड़ता है। कुण्डलिनी जागरण द्वारा भी एक-एक को पार करना पड़ता है।

इन शरीरों की कुछ विशेषताएँ हैं—

(ब) स्थूल शरीर

जीवात्मा की विकास यात्रा का आरम्भ इसी शरीर से होता है। संसार के सभी कार्यों एवं अनुभवों का यही माध्यम है जिससे जीवात्मा का विकास होता है। बिना इस शरीर के उसके विकास का अन्य कोई उपाय नहीं है। जीवात्मा की उन्नति की सभी साधनाएँ भी इसी शरीर से होती हैं। इसके बिना कोई भी साधना संभव नहीं है। शरीर को सताने या उसे हानि पहुंचाने से साधना में बाधा पड़ती है जिससे जीवात्मा का विकास रुक जाता है। इसलिए शरीर को सताना नहीं है, बल्कि इसका उपयोग करना है।

जब तक यह स्थूल शरीर स्वस्थ सशक्त और सन्तुष्ट नहीं होता तब तक अध्यात्म में प्रवेश कठिन है।

यह शरीर पूर्णत भौतिक तत्वों से बना होता है। इसमें केवल चेतना अभौतिक है। विज्ञान भी भौतिक शरीर बना सकता है किन्तु उसमें वह चेतना का प्रवेश नहीं करा सकता। वह रोबेट (यन्त्र मानव) ही होगा। जन्म के पश्चात् सात वर्ष तक इसी का विकास होता है। इसके भीतर के अन्य शरीर बीज रूप में रहते हैं जिनका उम्र के साथ विकास होता जाता है। इस समय बुद्धि, भावना, वासना आदि विकसित नहीं होती।

पशु का भौतिक शरीर ही विकसित होता है। जिनका जीवन पेट और प्रजनन की आवश्यकता पूर्ति तक ही सीमित है वे भौतिक शरीर में ही जी रहे हैं। कुण्डलिनी के रूप में इसका सम्बन्ध मूलाधार चक्र से है जो भौतिक शक्ति का प्रतीक है। इस शरीर में काम वासना की सम्भावनाएँ हैं जो

चौदह वर्ष की उम्र में भाव शरीर के विकास के बाद विकसित होती है।

यह कामवासना जन्म के साथ ही आती है। मनुष्य का यह शरीर पाँच कोशों का बना है जिनमें यह स्थूल शरीर ही इसका "अन्नमय कोश" कहलाता है क्योंकि अन्न से ही इसका पोषण होता है। जो व्यक्ति धन के पीछे ही भटकता है उसकी धर्म से उपेक्षा हो जाती है। वह धर्म को भी पैसा कमाने के माध्यम के रूप में काम लेता है जिससे उसका आत्मिक विकास रुक जाता है।

जिसके मन में सदा धन, यश, मान, सम्मान, प्रतिष्ठा ही बनी रहती है उसकी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। वह भौतिक शरीर में ही जी रहा है। उसका आत्मा, ईश्वर से लगाव हो ही नहीं सकता। वह पाखण्ड मात्र कर सकता है।

हठयोग तथा अष्टांग योग, भक्ति, तंत्र ज्ञान आदि की सभी साधनाएँ इसी शरीर से होती हैं। अतः यह शरीर सबसे महत्वपूर्ण है। सभी साधनाओं का अन्त ब्रह्म प्राप्ति पर ही होता है।

□□□

(स) आकाश या भाव शरीर

इस स्थूल शरीर के पीछे यह भाव शरीर होता है जो धुएँ की भाँति का होता है। मृत्यु के बाद तेरह दिन तक यह स्थूल शरीर के आसपास घूमता रहता है। इसका विकास सात से चौदह वर्ष की उम्र में हो जाता है। इसी शरीर के विकास से यौन परिपक्वता आती है। जो इस शरीर के विकास तक ही रुक जाता है यह यौन क्रिया तक ही सीमित हो जाता है। वह पेट और प्रजनन को ही जीवन का सार समझता है।

पशुओं में भी इस शरीर का विकास पाया जाता है। शरीर के चारों ओर दिखाई देने वाला आभा मण्डल (ओरा) इसी शरीर के कारण हैं। इस शरीर का सम्बन्ध कुण्डलिनी के "स्वातिष्ठान चक्र" से है जिसके विकास से ही इसका विकास होता है। इसके विकास से भय, क्रोध, घृणा, हिंसा, अभय, प्रेम, क्षमा, अहिंसा, भागना, डरना, बचना, छिपना, हमला करना आदि गुण विकसित होते हैं।

साधना या शिक्षा द्वारा इनका रूपान्तरण प्रेम, करुणा, अभय, मैत्री, अहिंसा में किया जा सकता है। ये गुण मनुष्य को प्रकृति से मिलते हैं जिनका विकास इस उम्र में हो जाना चाहिए। नहीं होने पर वह व्यक्ति असामान्य कहा जाता है। मन्त्र योग की साधना इसी से आरम्भ होती है। जिसका भाव शरीर विकसित हो जाता है वही मनुष्य है अन्यथा वह पशु ही है।

यह छाया शरीर ही "प्राणमय कोश" है। यह कोश सूर्य से प्राप्त विद्युत चुम्बकीय और जीवन शक्ति को ग्रहण कर

इनका पाचन करता है जिससे प्राणदायक शक्तियों का निर्माण होता है जिसे वह स्थूल शरीर में पहुंचाता है। अतिरिक्त प्राण किरणों के रूप में बाहर निकलते रहते हैं जिसे दुर्बल शरीर ग्रहण कर लेता है। छाया शरीर के बाहर निकलने पर मूर्छा आ जाती है। क्लोरोफार्म से भी छाया शरीर का बहुत सा भाग बाहर निकल जाता है जिससे शरीर का भान नहीं रहता है।

इस छाया को शरीर के बाहर निकलने पर ही प्रेतों का प्रभाव होता है। मृत्यु के समय चेतना छाया शरीर को बाहर निकाल ले जाती है तथा पुनर्जन्म के समय यह छाया शरीर स्थूल शरीर के ढाँचे पर ही स्थूल शरीर से पहले ही बन जाता है। इसी ढाँचे के अनुसार स्थूल तत्त्वों का संग्रह होकर स्थूल शरीर का निर्माण करते हैं।

□□□

(द) सूक्ष्म शरीर

भाव शरीर स्थूल शरीर का ही एक भाग है जो मृत्यु के बाद उसी के साथ थोड़े समय बाद नष्ट हो जाता है। इससे परे सूक्ष्म शरीर है जो जीवात्मा का स्व-शरीर है। मनुष्य में यह शरीर चौदह से इक्कीस वर्ष की उम्र तक विकसित हो जाना चाहिए। इसके पूर्ण विकसित न होने पर मनुष्य में कमी रह जाती है।

इसके विकास से बुद्धि, तर्क व विचार विकसित होते हैं। इसी शरीर के विकास से संस्कृति का विकास होता है। इसमें सन्देह, विचार, श्रद्धा, विवेक की संभावनाएँ हैं। सन्देह और विचार जन्मजात है, श्रद्धा और विवेक इनका रूपान्तरण है। सन्देह से श्रद्धा एवं विचार से ही विवेक उत्पन्न होता है। विचार नहीं करने वाला अन्धविश्वासी हो जाता है। वह हठधर्मी व दुराग्रही हो जाता है। विवेक वाले का निर्णय निश्चित व स्पष्ट होता है। जो सूक्ष्म शरीर को विकसित कर लेते हैं उनके चेहरे के चारों ओर आभा मण्डल (ओरा) दिखाई देता है जो आत्मा का ही प्रकाश है। यह आभा मण्डल सूक्ष्म कणों का बना होता है जो आँखों से दिखाई नहीं देता। इसी सूक्ष्म शरीर से स्थूल शरीर का निर्माण होता है।

अधिकांश मनुष्य इसी शरीर पर रुक जाते हैं। उनको यह जीवन ही सब कुछ मालूम होता है। आगे के जीवन की उनकी कल्पना ही नहीं होती। इस शरीर का सम्बन्ध कुण्डलिनी के "मणीपुर चक्र" से है। इस शरीर के विकास के बाद ही चौथा मनस शरीर विकसित होता है।

□□□

(य) मनस शरीर

पहले के तीन शरीरों का विकास स्वाभाविक रूप से हो जाता है किन्तु इस चौथे मनस शरीर का विकास साधना द्वारा करना पड़ता है। यह इक्कीस वर्ष के बाद विकसित हो सकता है। इसके विकसित होने से अतीन्द्रिय शक्ति आ जाती है जैसे सम्मोहन, दूर संप्रेषण, दूसरों के मन के विचार पढ़ लेना, शरीर से बाहर निकल कर यात्रा करना, परकाया प्रवेश, अपने को शरीर से अलग कर लेना, हवा में ऊपर उठ जाना, पानी पर चलना, दीवार के पार भी देख सकना, आँख बन्द करके चीजों को देख लेना, वनस्पति से बात कर लेना आदि। लुकमान एवं धन्वन्तरी मे इसी कारण हजारों जड़ी-बूटियों की खोज की तथा उनके गुण और उपयोग जाने।

चरक और सुश्रुत ने इसी सिद्धि से शरीर के बारीक-से-बारीक अंगों का भी वर्णन किया है। सुषुम्ना नाड़ी, कुण्डलिनी और षट्चक्रों को विज्ञान अभी भी नहीं खोज पाया है। रूस ने एक हजार मील तक विचार संप्रेषण का कार्य इसी विधि से किया है। इन विचार तरंगों का प्रभाव पदार्थ पर भी पड़ता है। संकल्प से वस्तुओं को हिलाई या तोड़ी जा सकतो है। विज्ञान ने भी इसके कई प्रयोग किए हैं।

योग की समस्त सिद्धियाँ जो पातंजल योग दर्शन में दी गई हैं वे इसी शरीर के विकसित होने से आ जाती हैं। कुण्डलिनी भी इसी शरीर की घटना है। जादू, चमत्कार इसी का विकास है। जब कुण्डलिनी से अनाहत चक्र जाग्रत होता है तो ये सिद्धियाँ आ जाती हैं। इसके जाग्रत होने पर काल व स्थान

की दूरी मिट जाती है। वह बिना ही इन्द्रियों के सीधा मन से देख व सुन सकता है। कल्पना, इसकी संकल्प सम्भावनाएँ हैं। ऐसा व्यक्ति शाप दे सकता है।

पुराण इसी शरीर को उपलब्ध व्यक्तियों द्वारा लिखे गये हैं किन्तु उनकी भाषा प्रतीकात्मक होने से वैज्ञानिक उन्हें नहीं समझ पाते। ऐसे ही व्यक्तियों ने प्रेतात्मा को जाना, मृत्यु के बाद जीवात्मा कहाँ जाती है? कहाँ व कैसे रहती है? कैसा अनुभव करती है? कौन इन आत्माओं को ले जाता है? पुनर्जन्म कब और कैसे होता है? गर्भ में जीवात्मा का प्रवेश कब होता है? स्वर्ग और नरक कहाँ है? आदि की जानकारी ऐसे ही व्यक्तियों ने दी, जो इस शरीर को सक्रिय कर सके।

इस मनस शरीर को जिसने विकसित कर लिया वे मृत्यु उपरांत स्वर्ग और नरक में जाते हैं। चित्त शुद्ध होने पर वे स्वर्ग का अनुभव करते हैं तथा चित्त निकृष्ट होने पर उन्हें नरक की अनुभूति होती है। शुद्ध चित्त वाले देवयोनि को प्राप्त होते हैं। जिनका सूक्ष्म शरीर ही विकसित है वे पुनः मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं। प्रेत दूसरों को हानि ही पहुंचाते हैं, देव सहायता करते हैं।

इन सिद्धियों के प्राप्त होने पर साधक इन्हीं में उलझ जाता है। वह चमत्कार ही दिखाता फिरता है। उसके आगे की अध्यात्म की यात्रा रुक जाती है। वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

योगियों के लिए यही सबसे बड़ी बाधा है कि जिससे योगी बहुत कम आगे पहुंचते हैं। स्त्रियाँ भी इससे आगे नहीं जा

सकतीं। भक्ति मार्ग वाले इसे पार कर जाते हैं। यह शरीर ही वेदान्त का "मनोमय कोश" है।

इस मनस शरीर के विकसित होने पर ही समाधि घटती है। इसी समाधि में आत्मज्ञान होता है। इसे "आत्म समाधि" कहते हैं। इसमें आत्मा के प्रकाश के साथ सम्पर्क हो जाता है जो इसका अगला चरण है।

यह मनस तल काफी गहरा है जिसके तीन परत हैं—अचेतन, समष्टि अचेतन तथा ब्रह्म अचेतन। इस अचेतन तल का शरीर पिछले जन्म के कर्माणुओं से बना है। यह भी मरण-धर्मा है। यह पिछले जन्मों की स्मृतियों का जोड़ है। इसमें उतरने पर पिछले जन्मों का सब कुछ याद किया जा सकता है। यह भी मन ही है। इसके आगे बढ़ने पर साधक "समष्टि अचेतन" में प्रविष्ट होता है।

इसमें प्रवेश करने पर दूसरे के अचेतन का ज्ञान हो जाता है। वह दूसरों की भावनाओं को पढ़ सकता है। उसके आते ही यह पता चल जाता है कि वह क्या पूछने वाला है। इससे व्यक्ति सारे जगत् से जुड़ जाता है। किन्तु यह भी ज्ञान की स्थिति नहीं है। यद्यपि यह "दैविक मन" (डिवाइन माइण्ड) है किन्तु है मन ही। इससे भी पार हो जाने पर वह "ब्रह्म अचेतन" में प्रवेश करता है। यहाँ उसे अनुभूति होती है कि 'मैं ब्रह्म ही हूं'।

इसके भी पार जाने पर मन समाप्त हो जाता है। इसी को निर्वाण या मोक्ष कहते हैं। यही जीवात्मा की परम एवं आखिरी स्थिति है। किन्तु इसमें भी अहंकार बच रहता है तो वह ब्रह्म लोक में रहकर वहाँ के भोगों को भोगता है। इससे

वह ब्रह्म शरीर को उपलब्ध होता है। यह भी मोक्ष ही है किन्तु इसमें ईश्वर व जीवात्मा का भेद बना रहता है। इसका भी पुनर्जन्म नहीं होता ।

अहंकार समाप्त होने पर ही उसका ब्रह्म में लय हो जाता है। उसकी अस्मिता ही समाप्त हो जाती है। इसी को "लय मुक्ति" कहते हैं। इस मनस तल तक स्त्री पुरुष का भेद बना रहता है। इसके पार "आत्म शरीर" को उपलब्ध होने पर फिर कोई भेद नहीं रहता क्योंकि आत्मा का कोई लिंग नहीं होता ।

(क) आत्मिक शरीर

यह आत्म शरीर कुण्डलिनी के "विशुद्ध चक्र" से सम्बन्धित है जिसके जाग्रत होने पर ही इसका अनुभव होता है। मनस शरीर से अपेक्षाएँ न रहने पर इसमें प्रवेश हो जाता है। इसका उपलब्ध होना सर्वाधिक महत्व का है। यहाँ स्त्री पुरुष का भेद समाप्त हो जाता है। यह मनस तल तक ही रहता है। आत्मा का कोई लिंग नहीं होता। यह जीवात्मा का अपना शरीर है। इस पर रुकने वाले को परमात्मा का अनुभव नहीं होता। जीवात्माएँ अनेक होने से वे अनेक आत्माएँ मानेंगे। यह शद्ध आत्मा का नहीं, जीवात्मा का ही अनुभव है। इसमें भी मोक्ष का अनुभव होता है।

यह स्थिति तृप्ति व आनन्द की है। इसलिए इसके आगे यात्रा को इच्छा नहीं होती। यहाँ आनन्द अपनी चरम ऊँचाई पर होता है किन्तु आगे की यात्रा के लिए इसकी भी उपेक्षा

करनी पड़ती है क्योंकि यह भी बाधक बन जाता है। अधिकांश साधक यहीं रुक जाते हैं। वे ब्रह्मज्ञान तक नहीं पहुंचते। जो आनन्द ही प्राप्त करने का इच्छुक है वह यहीं रुक जायेगा।

योग की क्रियाएँ व अन्य साधनाएँ यहीं समाप्त हो जाती हैं। पुरुषार्थ की यही अन्तिम सीमा है। इसके आगे समर्पण ही महत्वपूर्ण हो जाता है। पुरुषार्थ से बढ़ने वाले इससे आगे नहीं जा सकते। यहाँ अहंकार तो मिट जाता है किन्तु अस्मिता बनी रहती है। यहाँ पहुंचे व्यक्ति की घृणा, हिंसा, दुख, वासना आदि छूट जाती हैं किन्तु अपना अलग अस्तित्व बना रहता है।

इस शरीर को प्राप्त व्यक्ति दैव योनि में रहेगा। मोक्ष प्राप्त करने के लिए उसे पुनः मनुष्य योनि में आना पड़ेगा। यहाँ तक पहुंचे व्यक्ति से शक्तिपात सम्भव है। हठयोगी, योगी व आत्मसाधक यहीं तक पहुंच पाते हैं। आगे पहुंचने के लिए पुरुषार्थ की सभी विधियाँ व्यर्थ हो जाती हैं। वहाँ भिन्न विधियाँ काम में आती हैं। यही वेदान्त का "विज्ञानमय कोश" है।

□□□

(क) ब्रह्म शरीर

आत्मिक शरीर जीवात्मा का ही स्वरूप है। इसको भी खोने से ब्रह्म शरीर की प्राप्ति होती है। इसमें पाना नहीं खोना ही उपलब्धि है। इस शरीर के प्राप्त होने पर ब्रह्म अवस्था की उपलब्धि होती है। इसको प्राप्त व्यक्ति ब्रह्मलोक में निवास करता है। इसमें पहुंचकर व्यक्ति "अहं ब्रह्मास्मि" की घोषणा कर सकता है।

इस शरीर का सम्बन्ध कुण्डलिनी के "आज्ञा चक्र" से है। यहाँ आकर अस्मिता भी खो जाती है। जो अस्मिता को खोना नहीं चाहता वह ब्रह्म से पृथक रह कर यहाँ के भोगों को भोगता है। इसका पुनर्जन्म नहीं होता किन्तु यह उसकी इच्छा पर निर्भर है।

कर्मों के अनुसार नहीं बल्कि करुणावश वह जन्म ले सकता है। ऐसे व्यक्तियों को अवतार कहा जाता है। यहां व्यक्ति ब्रह्म हो जाता है। इस छठवें की समाधि को "ब्रह्म समाधि" कहते हैं। इसमें आकार समष्टिगत हो जाता है। यही "आनन्दमय" कोश है। जहाँ चेतना शुद्ध स्वरूप में रहती है।

□□□

(ख) निर्वाण शरीर

ब्रह्म शरीर में यदि अस्मिता बची रही तो उसे भी खोने पर निर्वाण उपलब्ध हो जाता है। इसमें शून्य ही शेष रह जाता है। ब्रह्म भी समाप्त हो जाता है। यहाँ दीपक बुझ जाता है, ज्योति शून्य में विलीन हो जाती है। वह ब्रह्म में विलीन हो जाता है। बूँद सागर में मिलकर एकाकार हो जाती है। वहाँ न अहं रहता है न ब्रह्म। यही निर्वाण है।

इसका सम्बन्ध "सहस्त्रार' से है। ब्रह्म ज्ञानी चाहे तो कल्पान्त तक ब्रह्मलोक में रुक सकता है। यह आखिरी बाधा है। अस्मिता के खोने के भय से अधिकांश साधक यहीं पर रुक जाते हैं। यह महामृत्यु है। ब्रह्म शरीर में शरीर शुद्ध चेतनमय होता है। यह अशरीरी स्थिति है। निर्वाण शरीर में प्रवेश संकल्प मात्र से ही होता है। यहाँ साधना व पुरुषार्थ की गति नहीं है। निर्वाण शरीर में प्रवेश करने के बाद सूचना देने वाला बचता ही नहीं।

जो इसमें प्रवेश कर गया वह लौट कर नहीं आता। इसलिए इसकी जानकारी किसी को नहीं है। यहाँ व्यक्तिगत ईश्वर को भी छोड़ना पड़ता है। जन कल्याण के लिए बुद्ध ने भी इसमें प्रवेश नहीं किया।

ये सात शरीर बाधाएँ हैं जिनको पार करने पर ही अंतिम स्थिति निर्वाण की प्राप्ति होती है।

□□□

१०. ब्रह्मविदों की परलोक यात्रा

(अ) ब्रह्म ज्ञान

परब्रह्म सर्वव्यापी है किन्तु उसकी अनुभूति चित्त में ही होती है इसलिए उसे हृदय में स्थित बताया गया है। जीवात्मा में भी ईश्वर के समान गुण होते हुए भी वे अहंकार, कामना, वासना आदि के कारण तिरोहित हैं जो चिन्तन से ही प्रकट होते हैं। परब्रह्म के ज्ञान के अभाव में ही यह जीवात्मा अज्ञान के कारण शरीर, मन, इन्द्रियों आदि को ही महत्त्व देती है।

यही उसके बन्धन का कारण है तथा उसके ज्ञान से ये सभी बन्धन टूटकर उसे सत्य स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। इसी ज्ञान से मुक्ति होती है। मोक्ष ब्रह्मज्ञान से ही होता है अन्य किसी कर्म से नहीं।

ईश्वर के गुणों के प्रकट न होने के कारण जीवात्मा का शरीर के साथ एकता मान लेना है यही सबसे बड़ी बाधा है जिसे पार किये बिना उसका ज्ञान सम्भव नहीं है। परमात्मा साकार भी है इसीलिए उपासना का महत्त्व है। उपासना से ही वह प्रत्यक्ष होता है। उसका प्रत्यक्ष दर्शन भी सम्भव है किन्तु बिना अभ्यास के यह सम्भव नहीं है। परब्रह्म का जगत्

से भेद और अभेद दोनों प्रकार से सम्बन्ध है। ज्ञानमार्गी अभेद उपासना को ग्रहण करते हैं एवं भक्त भेदोपासना को। दोनों का फल एक ही है। निष्काम भाव से किए गए शास्त्र विहित कर्म भी परमात्मा की प्राप्ति में सहायक है। अतः उनका त्याग उचित नहीं है।

अन्य सब धर्मों की अपेक्षा भगवान की भक्ति विषयक धर्म अधिक श्रेष्ठ है। जो साधक उस परब्रह्म के तत्त्व को नहीं समझ सकता उसके लिए प्रतीकोपासना का विधान किया गया है। प्रतीकोपासना करने वालों को उसी के अनुसार फल मिलता है। वे न तो ब्रह्मलोक में जाते हैं, न सीधे ब्रह्म को ही प्राप्त होते हैं।

(ब) ब्रह्मज्ञान के उपासक

ब्रह्म विद्या के तीन प्रकार के उपासक होते हैं—

(१) जिनको इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान हो जाता है। वे जीवन्मुक्त होकर प्रारब्ध भोग की समाप्ति पर देहपात के बाद सीधे परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

(२) दूसरे वे साधक हैं जो परब्रह्म को प्राप्त न होकर ब्रह्मलोक में जाकर वहां के भोगों को भोगते हुए कल्पान्त तक वहीं निवास करते हैं।

(३) तीसरे प्रकार के वे साधक होते हैं जिनको ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ है।

(स) ब्रह्मज्ञान का फल

ब्रह्मज्ञान का फल जन्म-मरण से छूटकर उस परमात्मा को प्राप्त होना ही है। इसका यही मुख्य फल है। केवल मात्र ब्रह्म ज्ञान ही मुक्ति का हेतु है। देवताओं की उपासना का फल साधक के उद्देश्य के अनुसार मिलता है। यज्ञादि कर्मों का फल स्वर्गादि में जाकर लौट आना है। ब्रह्मज्ञान के उन साधकों को जिनको इस जन्म में ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ है उसका फल उन्हें जन्मान्तर में मिलता है। किया हुआ अभ्यास व्यर्थ नहीं जाता।

ज्ञान प्राप्ति पर उसके संचित और क्रियमाण कर्म समाप्त हो जाते हैं एवं प्रारब्ध कर्म भोग से समाप्त हो जाने से उसका पुनर्जन्म नहीं होता। ज्ञान प्राप्ति पर पुण्य एवं पाप कर्म दोनों समाप्त हो जाते हैं जिससे वह परब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। ब्रह्म की प्राप्ति कर्मों का फल नहीं है बल्कि कर्म क्षय से प्राप्त होती है।

यह ज्ञान का ही फल है। परमात्मा की प्राप्ति का फल हर्ष-शोक का नाश, मृत्यु से छूटना, अविद्या का नाश, हृदय ग्रन्थि का नाश, समस्त संशयों एवं कर्मों का नाश, पापों से छूटना आदि है तथा इनके छूटने से परमात्मा की प्राप्ति होती है। दोनों का अन्तर्भाव एक ही है।

ब्रह्म ज्ञानियों को भी उनके संकल्प के अनुसार दो प्रकार का फल प्राप्त होता है।—(१) परब्रह्म को प्राप्त होना तथा (२) ब्रह्मलोक को प्राप्त होना। ये दोनों ही अन्त में मोक्ष देने वाले हैं।

(1) परब्रह्म को प्राप्त होना

जो समस्त प्रकार के भोगों से विरत है उन्हीं को ब्रह्म साक्षात्कार होता है, अन्य को नहीं। किसी भी प्रकार की कामना ब्रह्म प्राप्ति में बाधक है। जिनकी समस्त कामनाएँ नष्ट हो गई हैं, यहाँ तक कि स्वर्ग के भोगों की कामना न होने पर ही वह जन्म-मरण से छूट कर अमर हो जाता है तथा उसे मनुष्य शरीर में ही परब्रह्म का अनुभव हो जाता है। ऐसे व्यक्ति अन्य किसी लोक में न जाकर सीधे ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं तथा प्रारब्ध भोग समाप्त होने पर उनका स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर के तत्त्व अपने-अपने कारण तत्त्वों में विलीन हो जाते हैं।

यदि कोई विघ्न उपस्थित न हो तो इसी जन्म में मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। परब्रह्म को प्राप्त होने वालों का भिन्न अस्तित्व समाप्त होकर अभेद सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। परमात्मा से विभाग नहीं रहता। साधक की यह गति किसी पुरुषार्थ, कर्म अथवा साधना का फल नहीं है।

एक सीमा पर जाकर ये समाप्त हो जाते हैं। आगे की गति संकल्प के अनुसार होती है। यदि वह मुक्त होने का संकल्प करता है तो वह यहीं इस ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त हो जाता है।

□□□

(२) ब्रह्मलोक को प्राप्त होना

किन्तु जिन ज्ञानियों का संकल्प ब्रह्मलोक की प्राप्ति है उनको ब्रह्म साक्षात्कार नहीं हो सकता। उनके अन्तःकरण में ब्रह्मलोक के महत्त्व का भाव होने से तथा उनका कारण शरीर से सम्बन्ध विच्छेद नहीं होने से ऐसे साधक ब्रह्मलोक में जाते हैं। ब्रह्मज्ञानियों में भी ये दो फल भेद हैं। यह ब्रह्मलोक "कार्यब्रह्म" कहलाता है जहाँ जीवात्मा अनन्तकाल तक रहता है तथा प्रलय काल में वह ब्रह्मा के सहित परब्रह्म में लय हो जाता है। इनका भी पुनरागमन नहीं होता।

ब्रह्मलोक में पहुंचे ज्ञानियों का सब लोकों में इच्छानुसार गमन होता है। इनको वहाँ के दिव्य भोगों को भोगने का अधिकार है किन्तु उन्हें जगत की उत्पत्ति, संचालन तथा प्रलय का कार्य करने का अधिकार नहीं होता। यह कार्य परब्रह्म से उत्पन्न ईश्वर का ही है। ये ब्रह्मा के अधीन रहते हैं अतः सृष्टि के कार्यों में हस्तक्षेप करने का इनका अधिकार नहीं है, न इनकी शक्ति ही है। जो साधक ब्रह्म शरीर को प्राप्त कर लेते हैं वे इस लोक के अधिकारी होते हैं। निर्वाण शरीर को प्राप्त होने वाले सीधे परब्रह्म में विलीन हो जाते हैं।

कुछ अधिकार प्राप्त महापुरुष जैसे वशिष्ठ, व्यास आदि लोक कल्याण के लिए कहीं भी आ जा सकते हैं। सामान्य व्यक्तियों की भाँति इनका जन्म-मरण नहीं होता। ये परमेश्वर की आज्ञा से ही इस लोक में आते हैं एवं अपना कार्य करके पुनः परमात्मा में लीन हो जाते हैं। ये अन्य मुक्त पुरुषों से भिन्न होते हैं।

□□□

(द) ब्रह्मलोक में जाने का मार्ग

ब्रह्मलोक में जाने वाले साधकों तथा अन्य साधारण मनुष्यों की मृत्यु के बाद सर्वप्रथम वाणी के साथ समस्त इंद्रियाँ मन में स्थित हो जाती हैं, मन प्राण में, प्राण जीवात्मा में तथा जीवात्मा पाँचों सूक्ष्म भूतों में स्थित हो जाता है। यही सूक्ष्म भूत समुदाय तेज से मिला हुआ है, इसलिए इसे "तेज" भी कहते हैं।

यही जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर (लिंग शरीर) है जिसको लेकर यह ब्रह्म लोक की यात्रा करता है। इन सबके एक हो जाने पर हृदय के अग्र भाग में प्रकाश हो जाता है। ब्रह्मवेत्ता की यह ज्योति ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से निकलती है तथा ब्रह्मलोक में जाने वाले की यह सुषुम्ना नाड़ी से निकलती है।

साधारण मनुष्य की अपने कर्मानुसार अन्य मार्गों से निकलती है। ब्रह्मलोक में जाने वाली जीवात्मा तथा साधारण ममुष्य जिनका पुनर्जन्म होता है, सूक्ष्म भूत समुदाय में स्थित होने तक का मार्ग एक ही है क्योंकि ब्रह्मलोक में भी जीवात्मा अपने सूक्ष्म शरीर से ही जाता है। अन्य लोकों में गमन भी सूक्ष्म शरीर से ही होता है। यह सूक्ष्म शरीर मुक्तावस्था की प्राप्ति तक रहता है।

ब्रह्मलोक में जाने वाले की जीवात्मा स्थूल शरीर से निकलकर पहले सूर्यलोक (तेज) में जाती है जो ब्रह्मलोक का द्वार है। यह साधारण मनुष्य के लिए बन्द रहता है। इस तेजोमय पदार्थ (सूर्य) की गति ब्रह्मलोक तक है। इसी मार्ग से ज्ञानी ब्रह्मलोक तक पहुंच जाता है। ब्रह्मलोक में जाने वाले

ज्ञानी के लिए रात्रि या दक्षिणायन काल की कोई बाधा नहीं है।

भीष्म पितामह को उत्तरायण काल की प्रतीक्षा इसलिए करनी पड़ी कि वे वसु देवता थे। उन्हें ब्रह्मलोक में नहीं देव-लोक में ही जाना था। दक्षिणायन के समय देवलोक में रात्रि रहती है, इसलिए उन्हें उत्तरायण की प्रतिक्षा करनी पड़ी।

ब्रह्मलोक में जाने का संकल्प करने पर वह साधक देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। ब्रह्मलोक में जाने वाले सभी साधक और उपासक इसी देवयान मार्ग से ही ब्रह्मलोक को जाते हैं। अन्य कोई मार्ग नहीं है। इस मार्ग को अर्चिमार्ग, उत्तरायण मार्ग भी कहते हैं। यह एक ही मार्ग है जो विभिन्न लोकों में होकर जाता है। इन लोकों के अधिमानी पुरुष इन्हें आगे के लोकों में पहुंचा देते हैं। ये सूक्ष्म शरीरधारी देवता होते हैं। ब्रह्मलोक जाने वालों के सूक्ष्म तत्त्व कर्मों की गति के अनुसार विभिन्न लोकों में छिलके की भाँति छूटते जाते हैं व अन्त में ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

साधारण मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार जिस लोक के अधिकारी होते हैं उस लोक में रुक जाते हैं आगे का मार्ग उनके लिए बन्द रहता है।

११. साधारण जीवों की परलोक यात्रा

(अ) विभिन्न लोक

जिस प्रकार यह चेतन तत्त्व सात आवरणों से युक्त होकर स्थूल शरीर धारण करता है उसी प्रकार प्रकृति के तत्त्व घनीभूत होकर विभिन्न लोकों का निर्माण करते हैं। पदार्थ की सूक्ष्मता के आधार पर ही सात लोक हैं। सभी पदार्थ प्रकृति तथा पुरुष परमाणुओं के समूह से बने हैं। जहाँ सब पदार्थ एक ही प्रकार के पुरुष प्रकृति परमाणुओं के समूहों से बने होते हैं उसे "लोक" कहते हैं।

इन सभी प्रकार के परमाणुओं का आत्मा "ईश्वर" है जो सबके केन्द्र रूप में स्थित है। उस ईश्वर पर प्रकृति का संयोग होने से उस पर प्रकृति के परमाणुओं के आवरण चढ़ते जाते हैं जिससे उसकी घनता बढ़ती जाती है। ऊँचे के लोकों में कम तथा नीचे के लोकों में अधिक आवरण रहने के कारण उनकी घनता अधिक होती जाती है। जीवात्मा भी इसी प्रकार प्रकृति के आवरणों के कारण कम घनता से अधिक घनता को प्राप्त होकर स्थूल शरीर का रूप धारण करती है।

मृत्यु के बाद यह स्थूल शरीर का त्याग कर ऊँचे के कम घनता वाले लोकों में गमन करती है तथा अपनी ही घनता के अनुकूल लोकों में निवास करती है। सबसे कम घनत्व के आवरण के कारण वह ब्रह्मलोक में रहती है तथा इसका भी त्याग करने पर वह परमात्मा में लय हो जाती है।

लोकों का अर्थ ही है उस ईश्वर की आवरण युक्त अवस्था। जीवात्मा के सात शरीरों का सम्बन्ध इन्हीं सात लोकों से है जो अपने विकास के अनुसार ही इनमें प्रवेश करती है।

इन लोकों का नामकरण कई प्रकार से किया जा सकता है किन्तु मानवीय चेतना, प्रकृति तथा उसके विकास क्रम के आधार पर इनका विभाजन निम्न प्रकार से किया गया है—

(ब) भू-लोक

सभी लोकों में भू-लोक सबसे स्थूल अवस्था है जिसके पदार्थ अधिक घनत्व वाले होने से चक्षुन्द्रिय से दृश्य हैं। इस लोक में स्थूल पदार्थ पिंड से लेकर द्रव, गैस, परमाणु तथा ईथर तक की सभी अवस्थाएँ सम्मिलित हैं। यही दृश्य जगत कहलाता है। यह स्थूल शरीरधारी प्राणी भी इसी प्रकार अधिक घनत्व वाले होने से इसी स्थूल जगत में निवास करते हैं। सूक्ष्म जगत के प्राणी इसमें आ सकते हैं किन्तु वे स्थूल इन्द्रियों द्वारा देखे नहीं जा सकते।

ये सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त व्यक्तियों को ही दिखाई देते हैं अथवा जब ये सूक्ष्म प्राणी अपने अणुओं को अधिक घनत्व वाला बना

लेते हैं तभी दिखाई देते हैं। स्थूल जगत के प्राणी भी विशेष साधना द्वारा जब अपने परमाणुओं को सूक्ष्म बना लेते हैं तो वे भी सूक्ष्म लोकों को देख सकते हैं। सामान्य रूप से ये नहीं दिखाई देते।

यह अज्ञान तथा अविद्या का लोक है। ज्यों-ज्यों जीवात्मा की इस लोक से ऊपर के लोकों में पहुंच होती जाती है त्यों-त्यों ज्ञान का प्रकाश होता जाता है जिसकी अन्तिम परिणति मोक्ष में होती है। भूलोक में ही मनुष्य जन्म लेता और मरता है। मृत्यु इसी लोक की घटना है इसीलिए इसे "मर्त्य लोक" भी कहते हैं। यह चेतना की जाग्रत अवस्था है। इसी में विकास की सम्भावनाएँ हैं। सुख-दुःखों का अनुभव भी इसी लोक में होता है।

इस लोक में कामना एवं वासना का अज्ञान रहता है। जीव इसी में सुख मानता है, यही अज्ञान है। इस लोक में माया का विस्तार अधिक है। ज्ञान की इच्छा वाले इसमें विषयानन्द की इच्छा नहीं करते। इस स्थूल लोक से मोक्ष पर्यन्त जीवात्मा को स्थूल से सूक्ष्म की ओर सात लोक पार करने पड़ते हैं। स्थूल लोक का सम्बन्ध शरीर के "अन्नमय कोश" से है क्योंकि स्थूल शरीर का पोषण अन्न से ही होता है। जीवात्मा को बाह्य जगत का ज्ञान स्थूल शरीर से इस स्थूल लोक में ही होता है। मृत्यु के बाद यह जीवात्मा अपने स्थूल का त्याग करता है। इसके त्याग से स्थूल लोक का भी त्याग हो जाता है। मृत्यु पर जीवात्मा केवल स्थूल शरीर का ही त्याग करती है, अन्य सभी सूक्ष्म तत्त्वों को साथ लेकर जाता है जो बीज स्वरूप है। इसी से वह पुनः नया स्थूल शरीर धारण करता है।

(स) काम लोक

भू लोक सबसे स्थूल है। इससे सूक्ष्म "काम लोक" है जिसे "भुवर्लोक" भी कहते हैं। हिन्दू इसी को "प्रेत लोक" भी कहते हैं। मृत्यु के बाद व्यक्ति सर्वप्रथम इसी लोक में प्रवेश करता है। यह कामना का लोक है। इसमें वासना ग्रस्त जीव ही रहते हैं। इसके भी सात विभाग हैं। "पितर लोक" भी इसी की श्रेणी है जिसमें अधिक चेतना वाली एवं शान्त आत्माएँ रहती हैं। मानसिक स्तर के अनुसार इसे "निम्न मनस लोक" भी कहते हैं।

यह लोक सूक्ष्म परमाणओं से बना है। ईथर तक की अवस्था स्थूल लोक की ही है। ईथर को भी सूक्ष्म किया जाता है तो वह "भुवर्लोक" का पदार्थ बन जाता है। स्थूलता कम हो जाने से इसमें जीवन अधिक क्रियाशील रहता है। सूक्ष्म शरीर से ही इसमें प्रवेश होता है। स्थूल इन्द्रियों से इसका ज्ञान नहीं होता। जो व्यक्ति भौतिक कामनाओं से अधिक ग्रस्त होते हैं वे मृत्यु के बाद इस लोक में रहते हैं क्योंकि उनके परमाणु एक ही प्रकार के होते हैं। यह लोक स्वप्नावस्था तुल्य है। प्रेत, पिशाच, पितर आदि इसके कई विभाग हैं। काम लोक भुवर्लोक का एक ही भाग है।

जीवात्मा अपनी इच्छाओं, कामनाओं, वासनाओं आदि की तीव्रता के आधार पर इनमें विभाजित होकर एक निश्चित अवधि तक रहता है। यह अवधि हर व्यक्ति की अपने कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। इसके निम्न स्तर में घटिया मानसिक स्तर वाली निकृष्ट आत्माएँ रहती हैं। इसमें पशु प्रकृति अधिक होती है। इसी में यम लोक, आदि की अवस्थाएँ आती हैं।

सबसे नीचे के खण्ड में वातावरण अन्धकार युक्त और सुनसान होता है। इसमें जीवात्मा के सब दुर्व्यसन प्रकट हो जाते हैं। यहाँ नीच, शराबी, कुकर्मी, दूसरों को कष्ट पहुंचाने वाले जीव रहते हैं। ये लोग पृथ्वी के दुष्ट लोगों पर अपना प्रभाव जमा कर उनसे दुष्ट कर्म भी करवाते हैं। दुष्ट मनुष्य इसके माध्यम बन जाते हैं। पशु प्रवृति में रहने से इनका लिंग शरीर पशु रूप धारण कर लेता है। ये अपनी ही प्रकृति के अनुकूल मनस वाले स्थूल लोक के व्यक्तियों को अपने विचारों से प्रभावित भी करते हैं तथा सदा सहायता करते हैं जिससे वे अधिक दुष्ट हो जाते हैं व बुरा से बुरा कार्य कर बैठते हैं।

भली आत्माएँ भले व्यक्तियों की ओर आकर्षित होकर उनको और अधिक भले कार्य करने में सहायता देती हैं। इस लोक में जीवों को अपनी वासना के अनुसार सुख-दुःखों का अनुभव होता है। यह अनुभूति का तल है। स्थूल लोक में किए गए सभी अच्छे-बुरे अनुभवों का यहाँ पाचन होता है।

इस लोक में चेतना के विकास की सम्भावनाएँ नहीं हैं। यह जीव के अन्तराल का समय है। पुनर्जन्म से पूर्व निम्न एवं सामान्य मनस वाले जीव को एक निश्चित अवधि तक इसमें रहना पड़ता है। यहाँ रहकर जीवात्मा की शुद्धि होती है फिर वह आगे के लोक के उपयुक्त होने पर वहाँ जाता है। यहाँ मनुष्य की नीयत, कामना, वासना, सदाचार, बुद्धि आदि में कोई अन्तर नहीं आता। मनुष्य जैसा है वैसा ही रहता है केवल उसका स्थूल शरीर नहीं होता। इस लोक के सात खण्ड या भूमिकाएँ हैं।

प्रत्येक खण्ड के वासी दूसरे खण्ड वालों से नहीं मिल

सकते। वे अपने ही वर्ग के व्यक्तियों के साथ रहते हैं। ये वर्ग कर्म एवं मानसिक स्तर के अनुसार होते हैं। ये दूसरे खण्ड का हाल भी नहीं जान सकते। यहाँ पहुंचा व्यक्ति अपना रूप विचार मात्र से बदल सकता है तथा अपने विचारों का प्रभाव दूसरों पर डाल सकता है।

ये सूक्ष्म रूप से किसी की सहायता भी कर सकते हैं व हानि भी पहुंचा सकते हैं। इस लोक के पदार्थ सूक्ष्म व पारदर्शक होते हैं। ये प्रेत, आह्वान पर माध्यम में आते हैं व अपना हाल भी बताते हैं। इनकी बुद्धि कम होती है जिनसे इनकी सूचनाएँ किसी काम की नहीं होतीं। ये अपने मित्रों एवं परिजनों को दिखाई देते हैं व स्वप्न में भी आते हैं। ये घर की वस्तुओं को गिराकर अपनी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। यदि कोई इनकी इच्छा पूरी कर दे तो इनकी सद्‌गति हो जाती है व आगे के लोक में निकल जाते हैं।

इसकी पाँचवीं भूमिका अधिक आनन्दमय है। यह स्थूल स्वर्ग लोक है। ईसाइयों तथा मुसलमानों ने जिस स्वर्ग का वर्णन किया है वह इसी लोक का सर्वोच्च स्तर है। यहाँ मन चाही वस्तुएँ कल्पना मात्र से मिल जाती हैं। यहाँ के वासी उचित माध्यमों द्वारा पृथ्वी वासियों से बातचीत भी करते हैं। यहाँ सभी मत के लोग एक दूसरे की सहायता करते हैं। यहाँ भाषा की कठिनाई बनी रहती है।

इसकी सातवीं भूमिका में केवल बुद्धिमान स्त्री-पुरुष ही रहते हैं। यहाँ भी ये पुस्तकालय से पुस्तकें पढ़ते रहते हैं। राजनीतिज्ञ, राज्यकर्ता, यहाँ लम्बे समय तक रहते हैं तथा अपने अधूरे कामों को पूरा करते हैं। इन्हें मोक्ष पाने में विलंब होता है।

यहाँ से जब जीव आगे के लोक या स्वर्ग की ओर निकल जाता है तो उसका भुवर्लोक के कणों से बना शरीर छिलके की भाँति पड़ा रह जाता है जो धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। नए जन्म में वह इसी लोक से अपनी प्रकृति के अनुसार इनका पुनः संग्रह करके नया शरीर धारण करता है। इस समय श्राद्ध आदि कर्मों से उस जीवात्मा पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसका सम्बन्ध "प्राणमय कोश" से है।

(द) मनोलोक

जो मनुष्य स्थूल शरीर में ही जीते हैं, जो पेट और प्रजनन को ही जीवन का सार मानते हैं, जिसकी कामनाएँ एवं वासनाएँ भौतिक वस्तुओं से सन्तुष्टि तक ही सीमित हैं वे मृत्यु के बाद काम लोक में निवास करते हैं किन्तु इनसे ऊपर उठकर जो मन के तल पर जीते हैं वे मृत्यु के बाद इस मनोलोक में निवास करते हैं।

यद्यपि काम लोक भी मनोलोक का ही रूप है किन्तु यह इसका निकृष्ट तल है। मनोलोक सामान्य तल है तथा इसका उच्च तल ही स्वर्ग कहलाता है। ये तीनों मन के ही भाग हैं जिसमें जीव सूक्ष्म शरीर से रहता है।

यह मनोलोक ही जीवात्मा का जन्म स्थान है। मन का अर्थ है विचार करने वाला ही मनुष्य है। आत्मा का जब मन के साथ संयोग होता है तभी उसकी "जीवात्मा" संज्ञा होती है तथा मन से मुक्त होने पर वह अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। इसी को निर्वाण, मोक्ष आदि कहते हैं।

भुवर्लोक और मनोलोक में प्रकृति का ही अन्तर है। यहां की प्रकृति भुवर्लोक से अधिक सूक्ष्म होती है। यहाँ जीव विशेष क्रियाशील रहते हैं। प्रकृति की अवस्था के अनुसार इसके भी सात विभाग हैं जिनमें भिन्न-भिन्न मनस्तर की जीवात्माएँ रहती हैं। ये सात स्तर भी प्रकृति कणों की घनता के आधार पर हैं जो स्थूल से सूक्ष्म हो जाते हैं। इनमें प्रथम चार खण्ड रूप खण्ड हैं व अन्तिम तीन अरूप खण्ड हैं।

जिस प्रकार सृष्टि निर्माण में ब्रह्म से सर्व प्रथम "ब्रह्मा" की उत्पत्ति होती है जिससे सृष्टि का निर्माण होता है, उसी प्रकार व्यक्ति में मन है जिसकी उत्पत्ति भी आत्मा से होती है इस समष्टिगत मन को ही "ब्रह्मा" कहते हैं तथा व्यष्टिगत मन को "मन" कहा जाता है जो जीवात्मा की समस्त क्रियाओं का आधार है। इस मन से उत्पन्न विचार ही रूप धारण करते हैं। यहाँ सोचना ही करना बन जाता है।

इस मनोलोक के निम्न खण्ड को वेदान्त में "मनोमय कोश" तथा उच्च खण्ड को "विज्ञानमय कोश" कहा गया है। यह विज्ञानमय कोश ही जीवात्मा का निवास स्थान है। थियोसॉफी ने इसी को "कारण शरीर" कहा है। यह एक तेजोमय पिण्ड के रूप में होता है जिसे "हिरण्यगर्भ" भी कहा जाता है। इसी तेजोमय पिण्ड के भीतर परमात्मा का निवास है जिसके हटने पर ही आत्म ज्ञान होता है। इसी को ईशावास्य उपनिषद् सूत्र १५ एवं मुण्डक उपनिषद् सूत्र २/२/६ में स्पष्ट किया गया है।

मानव का विकास जीवात्मा का ही विकास है तथा यह कारण शरीर ही जीवात्मा है। कारण शरीर के नष्ट होने पर

फिर शुद्ध ब्रह्म ही शेष रहता है। जीवात्मा अपना अस्तित्व उस ब्रह्म में विलीन कर देती है। जीवात्मा का विकास धीरे-धीरे होता है। संसार के सभी अनुभव व संस्कार इस कारण देह में जमा रहते हैं तथा भविष्य में फल देते हैं।

यह कारण शरीर मुक्तावस्था तक प्रत्येक जन्म में बना रहता है। बाकी के स्थूल व लिंग शरीर और मनोमय कोश नष्ट होकर प्रत्येक जन्म में नये बनते रहते हैं। कारण शरीर में संग्रहीत सभी कर्म-अनुभव एवं संस्कार पुनः नये शरीर का कारण बनते हैं। यही प्रारब्ध कहलाता है।

जीवात्मा का निवास इस मनसलोक की पंचम भूमिका में है। प्रत्येक शरीर में जीवात्मा ही कर्ता है। उसी से अहंकार उत्पन्न होता है। यही अविद्या या भ्रम है। अपनी वासना के कारण यह अपने को शरीर, मन आदि समझ लेता है। किन्तु कर्ता जीवात्मा ही है एवं भोक्ता भी वही है। यह शरीर कर्ता एवं भोक्ता नहीं है।

इस मनोलोक में अनेक प्रकार के जीव रहते हैं। ये प्रतिभा सम्पन्न होते हैं। ईसाई व मुसलमान जिनको फरिश्ते या ईश्वर दूत कहते हैं वे इसी लोक के वासी हैं। इनकी बुद्धि, शक्ति और ज्ञान विशाल होता है। इसके अरूप खण्ड में जीवन्मुक्त महात्मा और उनके दीक्षित शिष्य रहते हैं जो मनुष्यों को नई-नई प्रेरणाएँ व सूझ देते रहते हैं।

□ □ □

(य) स्वर्गलोक

यह लोक मनोलोक से भी अधिक सूक्ष्म परमाणुओं से बना है। कामलोक का वास पूरा होने पर लिंग शरीर वहीं छूट जाता है किन्तु कामनाओं के बीज मनोमय कोश में खिंच जाते हैं तथा मनोमय कोश के भी नष्ट होने पर ये कारण शरीर में खिंचकर लय हो जाते हैं तथा मनोमय कोश की प्रकृति की सामग्री प्रकृति में लय हो जाती है। जीव अपनी यात्रा के लिए इस लोक में प्रवेश करता है। जब इस जीवात्मा का पुनर्जन्म का अवसर आता है तो उसका कारण शरीर इन्हीं लोकों में पुनः सामग्री का संग्रह करता है। अब जीवात्मा का केवल कारण शरीर रह जाता है जो मोक्ष पर्यन्त बना रहता है।

यह लोक देवगणों का लोक है। पहले जिस स्थूल स्वर्ग-लोक का वर्णन किया गया है। वह कामलोक का ही एक भाग है। इस लोक में देवगणों का ही वास है। इसके भी सात विभाग हैं जिनमें नीचे के चार खण्ड रूप विभाग हैं व शेष अरूप खण्ड हैं। सबसे नीचे के खण्ड में जीव मनोमय कोश से सम्बद्ध रहता है जिसके त्यागने पर वह उच्च खण्ड में जाता है। शुद्ध विचार, शुद्ध मन, सदाचार के प्रयत्न और इच्छाएँ उपकारार्थ कर्म करने वाले जीव यहाँ पहुंचते हैं।

कोई भी सद्गुण व्यर्थ नहीं जाता चाहे वह क्षण भर के लिए ही किया गया हो। थोड़ी भलाई करने वाले भी यहाँ थोड़ी अवधि के लिए अवश्य पहुंचते हैं, किन्तु ऐसा व्यक्ति यहां आता अवश्य है। पाशवी वृत्ति वालों का यहाँ प्रवेश नहीं होता। यहाँ कोई विरोधी व्यक्ति भी नहीं आता। यहाँ जीव

को अपने अनेक जन्मों की याद आ जाती है तथा आगे के जन्मों का भी पता लग जाता है। यहाँ बड़े-बड़े महात्माओं से सम्पर्क होता है। जिनके मनस शरीर का पूर्ण विकास हो जाता है वे ही इसमें पहुंचते हैं।

यहाँ जीव को सभी प्रकार का सुख मिलता है इसलिए इसे "स्वर्गलोक" कहते हैं। यहाँ सभी कामनाएँ इच्छा मात्र से पूरी हो जाती हैं। उत्तम गुणों वाले ही इसमें प्रवेश करते हैं। यहाँ सभी संशय मिट जाते हैं। यहाँ तक के सभी लोक मनःस्तर तक के ही हैं।

इसकी सबसे नीची भूमिका में हल्की मनोवृत्ति के लोग रहते हैं। दूसरी भूमिका में इष्टदेव के दर्शन भी होते हैं। यहाँ सभी धर्मों के लोग रहते हैं। तीसरी भूमिका में उदार चित्त और उत्साही जीव मिलते हैं। चौथी भूमिका में कला एवं साहित्य के बड़े-बड़े आचार्य अपने-अपने कार्यों में लगे रहते हैं। पृथ्वी के बड़े-बड़े संगीतज्ञ यहाँ उत्तम गान करते रहते हैं। यहाँ उत्तम-कोटि के चित्रकार व मूर्तिकार भी मिलते हैं। ये यहाँ अपना विकास भी करते हैं।

प्रकृति की शक्तियों का अन्वेषण करने वाले वैज्ञानिक भी यहाँ मिलते हैं। यहाँ विनीत एवं तत्त्व-जिज्ञासु भी आते हैं जिन्हें यहां गुरु का सान्निध्य प्राप्त होता है। इसमें जीव लम्बे समय तक रहते हैं। इस चौथी भूमिका तक जीवात्मा का मनोमय कोश रहता है। यहाँ के भोग समाप्त होने पर जीव इस मनोमय कोश का त्याग कर कारण शरीर में प्रवेश करता है जो इसकी पाँचवीं भूमिका है। यह अरूप खण्ड हैं। इसमें प्रवेश करने पर जीव को सृष्टि रचना का ज्ञान हो जाता है।

अपने कर्मों तथा उसके फलों का भी ज्ञान हो जाता है। यहाँ ब्रह्मा जी की मानसी सृष्टि के आदि रूप भी दिखाई देते हैं।

इसकी छठवीं भूमिका में तेजस्वी महापुरुष रहते हैं तथा इससे भी ऊँची सातवीं भूमिका में दीक्षित लोगों का निवास है। यह बुद्धि का स्थान है। स्थूल लोक की सारी बौद्धिक चेष्टाएँ यहीं से होती हैं। यहाँ पहुंचकर अहंकार का भी नाश हो जाता है व जीव ईश्वर की पूर्णता से भर जाता है। यही जीव का निज धाम है जहाँ वह पुनः लौट आता है।

मनुष्य जीवन का यात्रा चक्र यहीं तक के लोकों के मध्य निरंतर घूमता रहता है। यह सम्पूर्ण आवागमन चक्र जीवात्मा का जीवन काल है। यह इस स्थूल शरीर तक ही सीमित नहीं है जिसकी मृत्यु पर मनुष्य अपनी मृत्यु समझ लेता है।

(क) बुद्धि लोक

मन, बुद्धि और आत्मा एक ही ईश्वर के तीन रूप हैं। जब मनस तल की अवस्था से साधक आगे बढ़ता है तो उस मन का बुद्धि में लय हो जाता है तथा बुद्धि का आत्मा में लय हो जाता है। ये तीन रूप एक के बाद एक प्रकट होते हैं तथा इसके उल्टे क्रम से लय होते हैं। स्वर्ग तक के लोक मनःस्तर तक के ही हैं। इसके पार जाने पर जीव बुद्धि लोक में प्रवेश करता है। यहाँ मानवीय बुद्धि समाप्त हो जाती है तथा ईश्वरीय बुद्धि "प्रज्ञा" का प्राकट्य होता है।

इस प्रज्ञा के उदय होने पर आवागमन के बन्धन कट जाते

हैं। यह निर्वाण चेतना की एक अवस्था है। यहां निर्वाण लोक के पूर्ण मोक्ष का आस्वाद जीवात्मा को मिल जाता है। यह बुद्धि लोक की वेदान्त का "विज्ञानमय" कोश है। यहाँ स्थित महात्माओं का विकास पूर्व कल्पों में ही हो चुका था तथा ये ही जगत की शासन व्यवस्था संभालते हैं जैसे ये ईश्वर के मन्त्री हों।

जो देवगण नीचे के लोक की व्यवस्था करते हैं उनके भी ये अधिपति हैं। यह लोक सारे विश्व का हृदय है, जहाँ से प्राण की धाराएँ सब ओर जाती हैं। ब्रह्मा जी कल्पारम्भ में इसी लोक में प्रकट हुए थे और कल्प के अन्त में इसी में विलीन हो जाएँगे। योगी ध्यान द्वारा इस लोक में पहुंचने की चेष्टा करते हैं। यही परम पद है। आत्मिक और बुद्धि लोक में पूर्ण एकता है। यहां सभी प्रकार की भिन्नता एव द्वैत मिट जाता है। यह भेद मनस लोक तक ही रहता है। यहीं पहुंचकर विश्व बंधुत्व का अनुभव होता है।

सबमें एक ही अन्तरात्मा है किन्तु विकास की अवस्थाएँ भिन्न-भिन्न हैं, इसका ज्ञान यहीं पहुंचकर होता है। हमारी उत्पत्ति एक ही स्थान से हुई है, एक ही प्रकार से विकास होता है तथा सब एक ही स्थान पर जाना है, केवल आयु का अन्तर है, इसकी भी अनुभूति यहीं पहुंचकर होती है। यह "अक्षर" लोक है। यह सर्वज्ञता और पूर्ण ज्ञान का भण्डार है। यह स्वर्गलोक और आत्मलोक के मध्य है। आत्मज्ञान प्राप्ति से पूर्व जीवात्मा इसी लोक में पहुंचता है।

□ □ □

(ख) आत्मलोक

सभी मनुष्यों की आत्मा में वही एक परमात्मा स्थित है। बुद्धि के विकास से ही "मैं" भाव आ जाता है। इस आत्म-लोक को ही "निर्वाण लोक" कहते हैं। मनुष्य के हृदय में स्थित ईश्वर का जो मानवीय भाव है उसे "जीवात्मा" कहते हैं। साधक को पहले जीवात्मा का अनुभव होता है। यह लोक उसी के उत्तम एवं शुद्ध स्वरूप का लोक है।

वेदान्त में इसे "ब्रह्मलोक" कहा है। यह शुद्ध आत्मा का लोक है। इसमें जीवात्मा की सभी दैवी शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं। यह जीवन्मुक्त महात्माओं का निज स्थान है। जिन्होंने मानव जीवन की सब उन्नति प्राप्त कर ली है। यहाँ महात्मागण अपने कारण शरीर में दूसरों के कल्याण के लिए सदेह रहते हैं जिससे दूसरों का कल्याण कर सकें। यह इनकी शुद्ध अहंता रहती है। यहाँ द्वैत भाव नहीं रहता। ईश्वर की शुद्ध किरण को बुद्धिरूपी झिल्ली (आवरण) घेर लेती है तो वह ईश्वर से पृथक प्रतीत होने लगता है। इसे फिर मनोमय कोश की अरूप प्रकृति घेर लेती है। यह अण्डाकार कोश होता है। ईश्वर की पहली चिंगारी आत्मा, दूसरी बुद्धि तथा तीसरी मनस है जो परस्पर मिल जाती हैं। यही जीवात्मा का स्वरूप बन जाता है।

यह आत्मलोक ही कुण्डलिनी शक्ति का निज स्थान है, यह हृदयरूपी गुफा में है। इसी में पहुंचकर अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है। यही मोक्ष अवस्था है। यहीं पहुंच कर "एकोऽहं द्वितीयो नास्ति" की अनुभूति होती है। स्व को खोना ही इसे पाने का मार्ग है।

इस लोक में रहकर सत्यलोक की अनुभूति की जा सकती है। यही लोक समस्त सृष्टि का कारण है किन्तु यह भी सीमित है, सीमाबद्ध है। इसकी भी मर्यादा है। यही सत, चित् व आनन्द स्वरूप है। सृष्टि में जितने भी नाम रूप हैं सभी इसी की अभिव्यक्ति है। यह भी इकाई स्वरूप है। यही वेदान्त का "आनन्दमय कोश' है।

(ग) निर्वाण लोक

इसके आगे इस सातवें लोक में क्या है इसका ज्ञान किसी को नहीं है। यह ईश्वर के कल्पनातीत प्रकाश से आच्छादित है। यह ब्रह्म ही है। ब्रह्मलोक तक जीवात्मा की परमात्मा से पृथकता बनी रहती है। ब्रह्म में केवल संकल्प से ही प्रवेश होता है जिससे जीवात्मा का उसमें लय हो जाता है। फिर लौटने का कोई उपाय नहीं है। जो उसमें प्रवेश कर गए वे पुनः लौट कर नहीं आए। इसलिए इसकी कोई जानकारी किसी ने नहीं दी। ब्रह्मलोक तक की जानकारी ही मनुष्य के पास है।

आत्मलोक तथा निर्वाण लोक का विकास अभी मनुष्य में नहीं हुआ है किन्तु कठिन साधना से इसे प्राप्त किया जा सकता है। इसमें कुछ ही ाधकों ने प्रवेश किया है।

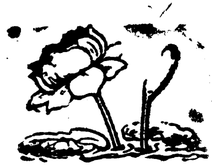

१२. पुनर्जन्म और अवतार

(अ) पुनर्जन्म का कारण

हिन्दू, जैन व बौद्ध धर्म पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं जबकि ईसाई एवं मुस्लिम धर्म एक ही जन्म मानते हैं किन्तु ऐसी कई प्रत्यक्ष घटनाएँ सामने आती हैं जिससे पुनर्जन्म को सिद्ध किया जा सकता है। कई व्यक्ति इसके गवाह भी होते हैं। थियोसॉफी ने भी इसे स्वीकार कर इसका वैज्ञानिक एवं तर्क संगत कारण सोदाहरण प्रस्तुत किया है।

पुनर्जन्म का मुख्य कारण कर्म नियम है। मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगने के लिए पुनर्जन्म ग्रहण करता है क्योंकि जीवन में किए गए स्थूल कर्मों का भोग स्थूल लोक में तथा स्थूल शरीर से ही होता है। जब तक जीवात्मा के समस्त कर्मफल भोग समाप्त नहीं हो जाते तब तक वह बार-बार जन्म ग्रहण करता ही रहता है। मुक्त पुरुष ही इस जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होते हैं, अन्य सभी को इस चक्र से बार-बार गुजरना पड़ता है।

पुनर्जन्म का दूसरा कारण शरीर के प्रति आसक्ति है। इसी शरीर के प्रति मोह के कारण ही वासनाएँ पैदा होती हैं

जिसकी पूर्ति हेतु जीवात्मा पुनर्जन्म ग्रहण करता है। जब तक जीवात्मा को ज्ञान द्वारा इन सांसारिक वासनाओं के प्रति वैराग्य नहीं हो जाता तब तक इसे रोका नहीं जा सकता।

इसका तीसरा कारण है, जीवात्मा बार-बार जन्म ग्रहण करके ही उनसे प्राप्त अनुभवों के आधार पर निरन्तर विकास को प्राप्त होती है जिससे कई जन्मों के बाद वह उच्च मानवता को प्राप्त होकर मुक्त हो जाती है जो इस जीवात्मा की अंतिम गति है। इसलिए पुनर्जन्म जीवात्मा की विकास प्रक्रिया के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य है।

कोई भी जीवात्मा एक ही जन्म में पूर्ण विकास नहीं कर सकती। इसलिए प्रकृति ने अनेक, जन्मों की व्यवस्था की है।

मृत्यु के बाद जीवात्मा एक निश्चित अवधि तक अन्तराल में रहती है जिसकी अवधि समाप्त होने पर वह पुनर्जन्म ग्रहण करती है। जीवात्मा अपने जन्म को चुनने में स्वतन्त्र नहीं है। उसके कर्म फलों के भोग के अनुसार दिव्य सत्ताएँ ही इसका चयन करती हैं। पूर्व जन्म में किए गए कर्मों का अन्तराल अवधि में पाचन होता है। उस पाचन के फलस्वरूप जो कर्म अधिक तीव्र होते हैं उनके अनुसार दैवी शक्तियां उसके कुल, परिवार, क्षेत्र, वातावरण एवं समय का निर्धारण करके उसके अनुकूल पुनर्जन्म का निश्चय करती हैं।

सामान्यतया जिस जीवात्मा का पूर्व जन्म में जिस कुल, वातावरण आदि से सम्बन्ध होता है उसका पुनर्जन्म उसी वातावरण में होता है किन्तु यदि जीवात्मा ने पूर्व जन्म में अधिक विकास कर लिया है तो वह कहीं भी अपने अनुकूल

वातावरण में जन्म ले लेती है जिससे वह अपने कर्मफलों का भोग कर सके तथा अपनी इच्छा, वासना आदि को पूरा करती हुई अपना विकास भी कर सके।

आज हमारा सम्बन्ध जिस क्षेत्र या परिवार से है वह इसी जन्म का नहीं है, बल्कि कई जन्मों का है। वर्तमान के नाते रिश्ते समाज की व्यवस्था मात्र है ये महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है इनसे प्रेम, दया, सौहार्द, विचारों की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता, ईर्ष्या, घृणा, बदला लेने की भावना, ऋण वसूल करना आदि जो पूर्व जन्म के अनुसार ही होता है। इनमें अन्तर नहीं आता।

पूर्व जन्म का पिता, पुत्र बन जाता है, पुत्र पिता बन जाता है, मां पत्नि बन जाती है, पत्नि माँ बन जाती है, बहन बन जाती है किन्तु प्रेम और घृणा के सम्बन्ध वैसे ही रहते हैं जैसे पूर्व जन्म में थे।

अन्तराल में भटकती आत्माएँ नए जन्म को ग्रहण करने को उत्सुक रहती हैं जो उसकी वासना की तीव्रता के कारण है। वासना कम होने पर पुनर्जन्म भी विलम्ब से होता है। शरीर तैयार होने पर ही जीवात्मा उसमें प्रवेश करती है। जीवात्मा के साथ मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि के होने से ही पुनर्जन्म होता है।

ये जीवात्माएँ भी समूह में पैदा होती हैं। अक्सर देखा गया है कई उत्कृष्ट आत्माएँ बिगड़ती हुई परिस्थिति को देख कर एक साथ जन्म लेती हैं जिससे समाज में एकदम क्रान्ति आ जाती है एवं समाज का पूरा ढाँचा ही बदल जाता है।

गाँधी, नेहरू, बिनोवा, सुभाष, तिलक आदि एक साथ पैदा हुए जिससे सारे देश का ढांचा ही बदल गया।

राम और कृष्ण भी अपने पूरे समूह को लेकर पैदा हुए थे। इसी प्रकार दुष्ट आत्माएँ भी एक साथ पैदा होती हैं। हिटलर, स्टालिन, माओ एक साथ पैदा हुए जिन्होंने दुनिया में तबाही मचा दी। ऐसी जीवात्माएँ अन्तराल में भी साथ रहती हैं।

इस संसार में जिन मनुष्यों का अनायास ही पारस्परिक प्रेम, स्नेह एवं आकर्षण के सम्बन्ध हैं, वे अनायास ही नहीं हैं बल्कि पूर्व जन्म के सम्बन्धों के कारण हैं तथा जिनके कटुता-पूर्ण सम्बन्ध हैं वे भी पूर्वजन्म के ही कारण हैं। यदि इनमें सुधार का प्रयत्न नहीं किया गया तो आगे भी वैसे ही रहेंगे।

दो भाइयों में अक्सर कटुतापूर्ण सम्बन्ध ही होते हैं। इसका कारण यही है कि दोनों भिन्न-भिन्न वातावरण एवं भिन्न-भिन्न संस्कारों वाले हैं। इनका पूर्व जन्म में न कोई सम्बन्ध था न आगे रहेगा। दोनों की यात्राएँ भिन्न-भिन्न प्रकार से हो रही हैं। एक ही गर्भ से जन्म लेने के कारण ही उन्हें भाई कहा जाता है अन्यथा कोई सम्बन्ध नहीं है।

किन्तु पूर्व जन्म में भी यदि उनके प्रेम पूर्ण सम्बन्ध रहे हैं तो वे इस जन्म में भी रहेंगे अन्यथा नहीं। कोई भी मनुष्य ईर्ष्या, द्वेष, बदला लेने की भावना, ऋण आदि की स्मृति कई जन्मों तक नहीं भूलता। वह इनका बदला लेकर ही रहता है। इनसे मनुष्य बच नहीं सकता।

(ब) पूर्व जन्म की स्मृति

जो भी इस जन्म में जाना गया है उसकी विस्मृति असंभव है क्योंकि शरीर अथवा मन से जो भी कर्म किये जाते हैं, जिन भावनाओं, आकांक्षाओं आदि का मानसिक पोषण किया जाता है उनकी छाप चित्त पर स्थाई रूप से जम जाती है जिसे मिटाने का कोई उपाय नहीं है। विशेष विधि एवं साधना द्वारा ही उसे मिटाया जा सकता है। तभी मनुष्य की जन्म-मरण से मुक्ति होती है।

किन्तु अधिकांश व्यक्तियों को अपने पूर्व जन्म की याद नहीं रहती। इसके कई कारण हैं। सामान्यतया जिस जीवात्मा के अन्तराल की अवधि कम होती है उसे अपने पूर्व जन्म की स्मृति बनी रहती है किन्तु लम्बे अन्तराल के बाद पुनर्जन्म होने पर उसे उसकी याद नहीं रहती क्योंकि उसकी वह स्मृति धूमिल हो जाती है।

जिस प्रकार दैनिक स्वप्न प्रातः थोड़े समय ही याद रहते हैं फिर व्यक्ति उन्हें भूल जाता है उसी प्रकार नये जन्म पर अपने पूर्व के अन्तराल समय एवं पूर्व जन्म का छः महीने तक सब कुछ याद रहता है।

इस समय बालक नींद में कभी हँसता है, कभी चमकता है, कभी उसके होंठ हिलते हैं आदि जो उसकी पूर्व जन्म की स्मृतियों के मस्तिष्क में आने से ही होता है। फिर ज्यों-ज्यों इस जीवन का ज्ञान होने लगता है त्यों-त्यों वह पुराने को भूलता जाता है। कुछ लोगों को अधिक समय तक याद रहता है।

पूरी आयु करके मरने वालों की भी पूर्व जन्म की स्मृति नहीं रहती क्योंकि उनकी वासनाएँ तीव्र नहीं होती एवं उनके प्राण भी बेहोशी में निकलते हैं। उन्हें लम्बे समय तक अन्तराल में रहना पड़ता है जिससे उनकी स्मृति धूमिल पड़ जाती है।

दुर्घटना से मरने पर व्यक्ति के प्राण बड़ी कठिनाई से निकलते हैं तथा मृत्यु के समय उन्हें होश बना रहता है तथा उनकी अतृप्त वासना के कारण उनका पुनर्जन्म भी शीघ्र हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों को अपने पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहती है। यह स्मृति सामान्यतया चार से सात वर्ष तक की उम्र तक ही रहती है फिर वह भूल जाता है।

पूर्व जन्म का हाल बताने वालों में अधिकाँश ऐसे ही बच्चे होते हैं जिनकी मृत्यु किसी दुर्घटना से अथवा भयंकर बीमारी से हुई है। आत्म हत्या करने वालों, युद्ध में मरने वाले सैनिकों आदि का पुनर्जन्म देरी से होता है किन्तु उनकी भी स्मृति बनी रहती है।

पूर्व जन्म की स्मृति के कई उदाहरण सामने आते रहते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

(१) एक अमरीकी जनरल जार्ज पैटन को अपने पिछले छः जन्मों की याद थी। वे इन छः ही जन्मों में योद्धा थे। पहले जन्म में प्राग् ऐतिहासिक कालीन योद्धा थे, दूसरे में ग्रीक योद्धा थे जो साइप्रस के राजा के खिलाफ लड़े थे, तीसरे में सिकन्दर महान् के, चौथे में जूलियस सीजर के, पाँचवें में अंग्रेज 'नाईट' योद्धा थे जिसने 'हंड्रेड इयर्स वार' के दौरान

क्रैसी युद्ध में भाग लिया था, छठवें में नेपोलियन की सेना में मार्शल थे।

(२) दूसरा उदाहरण मथुरा जिले के छत्ते कस्बे के प्रकाश का है। प्रकाश जब साढ़े चार वर्ष का था तब वह कहने लगा "वह प्रकाश नहीं निर्मल है। वह पास के कस्बे कोसी कलां का रहने वाला है।" प्रकाश के जन्म के १६ वर्ष पूर्व निर्मल की मृत्यु हो गई थी। उस समय वह दस वर्ष का था। जब प्रकाश को वहां ले जाया गया तो उसने पूर्व जन्म के सभी रिश्तेदारों, स्थान व चीजों को पहचान कर बता दिया।

(३) ऐसी ही एक ताजा घटना वर्तमान में उदयपुर जिले के कांकरोली कस्बे के एक पोस्ट मास्टर के लड़के की है जिसे सात वर्ष की उम्र में अपने पूर्व जन्म की याद आ गई। वह कहने लगा, "मैं टोंक का रहने वाला हूं तथा बिजली का करंट लगने से मेरी मृत्यु हो गई थी। अभी वर्षा हो रही है मेरी पत्नि तकलीफ पा रही होगी।" उसे जब वहाँ ले जाया गया तो उसने अपनी पत्नी व बच्चों को पहचान लिया। उसका पुनर्जन्म बीस वर्ष बाद हुआ था। यह लड़का अभी मौजूद है।

पूर्व जन्म की स्मृतियाँ प्रत्येक मनुष्य में संस्कार रूप में विद्यमान रहती हैं जिन्हें थोड़ी सी साधना द्वारा पुनः स्मृति में लाई जा सकती हैं। सम्मोहन द्वारा भी पूर्व जन्म में प्रवेश कराया जाकर पूर्व जन्म का हाल ज्ञात किया जा सकता है। कईयों को स्वाभाविक रूप से इसका ज्ञान हो जाता है। पूर्व जन्म के इन्हीं संस्कारों से वर्तमान जीवन में मनुष्य का

व्यक्तित्व बनता है। पूर्व जन्मों में सभी भिन्न-२ वातावरण में पैदा हुए थे इसलिए उसके अनुसार उनके संस्कार भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

वर्तमान जीवन में चाहे उन्हें एक ही समान वातावरण दिया जाए तो भी उनकी यह भिन्नता उभर कर आ जाती है। इसका कारण उनके पूर्व जन्म के संस्कार ही हैं। किन्तु इनके प्रभाव को शिक्षा, माता-पिता अथवा समाज के वातावरण से कम भी किया जा सकता है किन्तु थोड़ा-सा ही उस प्रकार का वातावरण मिलने पर शीघ्र ही उभर कर प्रकट हो जाते हैं। ये दब जाते हैं किन्तु नष्ट नहीं होते। इनके प्रभाव को कम करना ही नैतिकता है।

ऐसे संस्कार जब कभी प्रकट होते हैं तो वे मनुष्य के व्यक्तित्व का ढाँचा ही बदल देते हैं। अच्छे संस्कार आत्म-ज्ञान, यतीन्द्रिय ज्ञान, प्रभु कृपा, सत्संग आदि से प्रकट होते हैं अन्यथा वे सुप्त ही पड़े रहते हैं। आज का वातावरण बुरे संस्कारों को उभारने का साधन बन गया है। आज का व्यक्ति इस समय के वातावरण से ही अधिक प्रभावित हो रहा है तथा किसी प्रकार इस दुनिया में अपनी व्यवस्था मात्र बिठा रहा है। अपने पूर्व संस्कारों का ज्ञान उन्हें होता ही नहीं।

□□□

(स) अवतार

पुनर्जन्म और अवतार में भेद है। पुनर्जन्म कर्मफलों के भोग के लिए तथा जीवात्मा अपने विकास के लिए ग्रहण करती है। इन जीवात्माओं को बाध्य होकर जन्म धारण करना पड़ता है किन्तु अवतार वाली आत्माएँ पूर्ण विकसित होती हैं। उन्हें न विकास की आवश्यकता होती है न इनके कर्मफल ही शेष होते हैं।

ईश्वरीय योजनानुसार ये संसार में उच्च ज्ञान देने के लिए आती हैं अथवा विशेष प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने आती है तथा कार्य समाप्ति पर पुनः लौट जाती है। ये भी ईश्वर द्वारा ही नियुक्त होते हैं किन्तु इनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास हो चुका होता है। इनमें ईश्वरीय चेतना होती है। संसार में आकर इन्हें साधना की आवश्यकता नहीं होती। उपदेश मात्र देने से कोई अवतार नहीं हो जाता। यह कार्य सन्तों का है। अवतार पूरे जन-जीवन को आन्दोलित कर देते हैं।

जब भी कोई अवतार होता है तो वह अकेला नहीं होता, अपने पूरे समूह को लेकर आता है। यह समूह पूर्व जन्मों का होता है। अक्सर सभी जीवात्माएँ अपने कर्मों के अनुसार समूह में ही रहती हैं व समूह में ही मरती हैं। अगले जन्म में फिर अपने पूरे समूह के साथ जन्म लेती है। इन साधारण जीवात्माओं का उस अवतार के साथ एक तादात्म्य होता है जैसे कृष्ण के साथ गोप, ग्वाल, गोपियाँ आदि पूर्व में भी उनके साथ थे ऐसी कथाएँ हैं।

पूर्व जन्म के विरोधी भी इस जन्म के विरोधी बनकर सामने आते हैं जैसे बुद्ध का चचेरा भाई देवव्रत, कृष्ण के साथ बहेलिया जो पूर्व जन्म में बाली था, आदि।

अवतार लेने में देवता भी उत्सुक रहते हैं व सहायक होते हैं। वे उसके मङ्गल की सदा कामना करते रहते हैं। ऋषि-मुनि भी कामना करते हैं। राम जन्म पर कई ऋषि-मुनि आशीर्वाद देने आये। बुद्ध के साथ भी ऐसा ही हुआ।

हिन्दुओं की अवतार की धारणा स्पष्ट है। अन्य धर्मों ने भी अपनी-अपनी व्याख्याएँ दी हैं।

तप और तीर्थ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है मोक्ष की नहीं, मोक्ष प्राप्ति के लिए इस ग्रंथ का मनन ही एकमात्र साधन है।

योगवाशिष्ठ (महारामायण)

व्याख्याकार—श्री नन्दलाल दशोरा

भारतीय अध्यात्म ग्रन्थों में योगवाशिष्ठ का स्थान सर्वोपरि है। अद्वैत की धारणा को परिपुष्ट करने वाला, अध्यात्म के गूढ़ सिद्धान्तों का विवेचन करने वाला एवं भारतीय दर्शन की मान्यताओं का समस्त सार इसमें समाहित है। भारतीय चिंतन का यह प्रतिनिधि ग्रन्थ है जिसके मनन से समस्त भ्रान्तिपूर्ण धारणायें निर्मूल होकर सत्य-स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। महर्षि वशिष्ठ ने जो ज्ञान अपने पिता ब्रह्मा से प्राप्त किया था वह उन्होंने भगवान राम को दिया जिससे वह जीवन्मुक्त होकर रहे। इसी वशिष्ठ और राम संवाद के ज्ञान का संग्रह महर्षि बाल्मीकि ने जन-कल्याण के लिए किया था।

यह ग्रन्थ केवल तात्विक विवेचन ही नहीं है अपितु मोक्ष साधना की विधि को इसमें इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक पाठक इसका प्रयोग घर बैठे कर सकता है। इसमें न हठयोग जैसी कठिन क्रियायें करनी हैं, न मंत्रजाप, न पूजा और प्रार्थना करनी है। यदि कोई साधक इसमें दी गई विधियों को पूर्णतया प्रयोग करे तो उसे मोक्ष लाभ मिल सकता है।

इस ग्रन्थ को पढ़ने के पश्चात् किसी अन्य ग्रन्थ को पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि जो बातें इस ग्रन्थ में हैं वे अन्य ग्रन्थों में भी मिलेंगी; जो इसमें नहीं हैं वे कहीं न मिलेंगी। महर्षि वशिष्ठ ने अनेक उपाख्यानों के माध्यम से जो ज्ञान, भगवान राम को दिया वही योग वाशिष्ठ के नाम से विख्यात यह अमर ग्रन्थ वेदान्त का सारभूत उपदेश माना गया है जिसे अब नवीनतम शैली में श्री नन्द लाल दशोरा ने समझाने का अनथक प्रयास किया है।

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार-२४९४०१

तीन उपनिषद

(ईशावास्य, मुण्डक, श्वेताश्वतर)

लेखक—नन्दलाल दशोरा

मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह क्षणिक को ही महत्व देकर शाश्वत की उपेक्षा करता रहता है। किन्तु क्षणिक सुख के पीछे कितना दुःख छिपा है इसका उसे ज्ञान नहीं है। जिस कारण इसके अवश्यम्भावी परिणामों से वह मुक्त नहीं हो सकता।

भारतीय अध्यात्म की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें जीवन और अध्यात्म इन दोनों का ही इस प्रकार समन्वय किया गया है कि जिससे मनुष्य भौतिक जगत में रह कर भी उच्च जीवन हेतु अग्रसर हो सकता है। अध्यात्म की वेदी पर जीवन की बलि भी नहीं दी गई और जीवन के लिए अध्यात्म का तिरस्कार भी नहीं किया गया।

उच्च जीवन के लिए इन्हीं महान आदर्शों का समन्वय और सम्पूर्ण ज्ञान का निरूपण करने वाले ग्रन्थ ही उपनिषद हैं। जो सभी ग्रन्थों को नहीं पढ़ सकते अथवा उनके क्लिष्ट सिद्धान्तों को नहीं समझ सकते उनके लिए उपनिषद ही सर्वोपरि महत्व के हैं। जिनके अध्ययन से उन्हें भारतीय चिंतन की पराकाष्ठा का ज्ञान हो सकेगा। इसी महत्वपूर्ण एवं शाश्वत ज्ञाननिधि का थोड़ा सा परिचय देने के लिए ही इन तीन उपनिषदों का चयन किया गया है।

प्रकाशक :

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार-२४९४०१

अष्टावक्र गीता

(राजा जनक और ज्ञानशिरोमणि अष्टावक्र का ज्ञान सम्वाद)

व्याख्याकार—**श्री नन्दलाल दशोरा**

अष्टावक्र गीता भारतीय अध्यात्म का शिरोमणि ग्रन्थ है जिसकी तुलना किसी अन्य से नहीं की जा सकती। आत्मज्ञान प्राप्ति की अनेक विधियाँ हैं और विभिन्न धर्मों में विभिन्न विधियां अपनाई जाती हैं। किन्तु अष्टावक्र सीधा अज्ञान पर चोट करते हैं वे किसी विधि, क्रिया, पूजा, प्रार्थना, ध्यान, कर्म, भक्ति, भजन, कीर्तन, हठयोग आदि कुछ भी आवश्यक नहीं मानते। वे मानते हैं कि ये सभी क्रियायें आडम्बर व दिखावा मात्र हैं जिससे धार्मिक तो दिखाई देता है किन्तु उपलब्धि नहीं हो सकती। उपलब्धि के लिए बोधमात्र पर्याप्त है। जैसे अन्धकार स्वयं लुप्त हो जाएगा, किन्तु लोग दीपक जलाना छोड़ कर अन्धकार को सीधा हटाने की प्रक्रिया में सब साधनायें कर रहे हैं जो व्यर्थ ही नहीं मूर्खता पूर्ण भी है। ज्ञान प्राप्ति का मार्ग केवल बोध है। अष्टावक्र ने ऐसा केवल उपदेश ही नहीं दिया बल्कि राजा जनक पर प्रयोग करके वैज्ञानिक दृष्टि से सत्य सिद्ध करके दिखा दिया है कि यह कोई सैद्धान्तिक वक्तव्य नहीं अपितु प्रयोग सिद्ध वैज्ञानिक सत्य है। इस दृष्टि से इसे भारत का नहीं विश्व-अध्यात्म का शिरोमणि ग्रन्थ माना जाता है। यह पुस्तक आत्म ज्ञान के मुमुक्षु व्यक्तियों के लिए निश्चित ही एक ऐसी नौका है जिसमें बैठकर साँसारिक बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष का लाभ प्राप्त किया जा सकता है, जो जीवन की उच्चतम स्थिति है।

मंगाने का पता—

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार (उ० प्र०)

महर्षि वेदव्यास प्रणीत

ब्रह्मसूत्र-वेदान्त दर्शन

व्याख्या—नन्दलाल दशोरा

भगवान श्री वेदव्यास ने इस ग्रंथ में परब्रह्म के स्वरूप का साङ्गोपांग निरूपण किया है, इसलिए इसका नाम ब्रह्मसूत्र है तथा वेद के सर्वोपरि सिद्धांतों का निदर्शन कराने के कारण इसका नाम वेदान्त दर्शन भी है। चार अध्यायों और सोलह पादों में विभक्त इस पुस्तक में 'ब्रह्म' की पूर्ण व्याख्या दी गई है, जिससे जिज्ञासुओं की समस्त भ्रान्तियों का निराकरण हो जाता है तथा उनकी ब्रह्म में प्रतिष्ठा हो जाने पर वह परम मुक्ति का अनुभव कर सभी शोक संतापों से मुक्त होकर परमानन्द को उपलब्ध हो जाता है जो इस जीव की परम एवं अन्तिम स्थिति है, जिसे प्राप्त कर लेना ही जीव का अन्तिम उद्देश्य है।

जिस प्रकार किसी वस्तु के निर्माण में छः कारणों की आवश्यकता होती है—निमित्त कारण, उपादान कारण, काल, पुरुषार्थ, कर्म और प्रकृति। इसी प्रकार सृष्टि निर्माण में भी छः ही कारण अनिवार्य हैं। इन छः कारणों की व्याख्या ही भिन्न-भिन्न छः दर्शनों में की गई है। इनमें से निमित्त कारण 'ब्रह्म' की व्याख्या ब्रह्मसूत्र अथवा 'वेदान्त दर्शन' में की गई है।

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार

योग साधना और उसके लाभ

लेखक—नन्दलाल दशोरा

चित्त की अनियन्त्रित वृत्तियाँ ही संसार में सभी दुःखों का कारण हैं तथा इसी से सभी प्रकार के कुकर्म, दुराचार, अनाचार, अत्याचार आदि होते हैं जिससे व्यक्ति का स्वयं का व्यक्तित्व एवं सम्पूर्ण समाज का वातावरण दूषित हो जाता है। चित्त की इन अनियन्त्रित एवं उच्छ्रंखल वृत्तियों को नियन्त्रण में लाने का कार्य योग द्वारा ही सम्भव है। इनके निरोध से एक ओर समाज में सुव्यवस्था आती है तथा दूसरी ओर व्यक्ति अपनी सुप्त शक्तियों एवं क्षमताओं का विकास कर वह आत्मा के प्रकाश से आलोकित हो उठता है। आत्मा का यही प्रकाश उसके मोक्ष का कारण बनता है।

आत्म ज्ञान की साधना

लेखक—नन्दलाल दशोरा

आत्मज्ञान का मार्ग पुरुषार्थ का मार्ग है और पुरुषार्थ की एक सीमा हैं जहाँ इसकी समाप्ति हो जाती है। अंतिम उपलब्धि प्रसाद रूप में ही होती है जिसकी धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। जिनकी भोगों में रुचि है तथा जिनकी चेतना का अभी विकास नहीं हुआ है उनके लिए यह मार्ग नहीं है लेकिन पाठक इस ज्ञान के आलोक से अवगत होकर अपने जीवन को इस विकास प्रक्रिया में आगे बढ़ा सकें इसी आशा से यह पुस्तक प्रस्तुत की गई है।

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार

श्री काली उपासना

संग्रहकर्ता : स्वामी उग्रचण्डेश्वर 'कपाली'

इस पुस्तक में काली उत्पत्ति की कथा, काली स्तुति, काली का स्वरूप, यन्त्र, कालिका सहस्त्र नाम स्तोत्र, कालिकाष्टक और कई आरतियाँ श्री का प्रसन्न करने के लिए दी गई हैं। साधनों और मन्त्र-तन्त्र के इच्छुकों के लिए है।

श्री भैरव उपासना

इस ग्रन्थ में भैरव उत्पत्ति की कथा, भैरव चालीसा, भैरवाष्टक, भैरव के भैरव सहस्त्र नाम स्तोत्र, बटुक भैरव यन्त्र, भैरव उपासना विधि, भैरों नाथ द भैरव जी की आरतियाँ इत्यादि सम्मिलित की गई हैं

रुद्राक्ष महात्म्य और धारण विधि

लेखक—बाबा औढर नाथ 'तपस्वी'

इस पुस्तक में रुद्राक्ष महात्म्य, रुद्राक्ष की उत्पत्ति, रुदाक्ष के भेद, रुद्राक्ष रुद्राक्ष की परम शक्तियाँ, रुद्राक्ष के लक्षण और मंत्र न्यास, जपमाला के लक्ष रोगों में प्रयोग, रुद्राक्ष खरीदते समय सावधानियां तथा अनेक आवश्यक बातों

रुद्राक्ष भस्म और त्रिपुण्ड्र विज्ञान

लेखक—डा. रामकृष्ण उपाध्याय

रुद्राक्ष की व्युत्पति, उत्पत्ति लक्षग, महत्ता, मुखभेद, जातियां, धारण माला जप, वनस्पति विज्ञान और आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से रुद्राक्ष का अध्य त्रिपुण्ड्र से सम्बन्धित जानकारी।

इस पुस्तक में मन्त्र दी इस पुस्तक म मन्त्र दा में स्थान
में आसन और माला, मन्त्र में आसन और माला, मन्त्र स्तक म मन्त्र रोग
नाशक मन्त्र परीक्षा में सफ नाशक मन्त्र परीक्षा में सफ न और माला, शीक
वशीकरण मंत्र, काली मंत्र, शीकरण मंत्र, काली मंत्र, न्त्र परीक्षा में के उप
संग्रह है।

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) ह